राजयक्ष्मा-विज्ञान

लेखक—

पं० पारसनाथ पाण्डेय, G. A. M. S.

शङ्कर औषधालय, सीतामढ़ी (मुजफ्फरपुर)

राजयक्ष्मा-विज्ञान

कौस्तुभालंकृतोरस्कममृतानन्दितामरम् ।
लक्ष्मी-लालितहस्ताब्जं वैद्यं श्रीहरिमाश्रये ॥
प्रणम्य गुरुवर्यान्स्वान् प्रमथ्य श्रुतिसागरम् ।
ग्रथ्यते सत्प्रमा-रत्नैर्ग्रन्थोऽयं लोक-रञ्जनः ॥
रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा ।
सुधेवोत्तमनागानां विज्ञानमिदमस्तु ते ॥

लेखक—
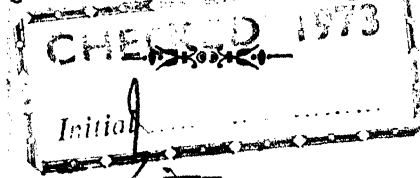
पं० पारसनाथ पाण्डेय, जी. ए. एम. एस.

प्रथम संस्करण १००० } श्रावणी पूर्णिमा सं० २००३ वि० { मूल्य २)

प्राप्त सम्मतियाँ।

—):*:(—

आयुर्वेदाचार्य, काव्य-सांख्य-तीर्थ, कविरत्न आयुर्वेद प्रधानाध्यापक—गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, मुजफ्फरपुर तथा औनरेरी वैद्य इन्सपेक्टर, सारन डि० बो० के स्वनाम धन्य गोस्वामी पं० भैरव गिरि जी लिखते हैं—

—"राज-यक्ष्मा-विज्ञान" नामकी आपकी पुस्तिका देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आयुर्वेद में ऐसी पुस्तकों की बहुत बड़ी कमी हैं और आपके इस प्रयास ने इस दिशा में स्तुत्य कार्य किया है। इससे छात्रों को ही नहीं प्रत्युत नव-चिकित्सकों को भी दिशान्वेषण में सहायता प्राप्त होगी। हिन्दी माध्यम से चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा देनेवाली "आयुर्वेदिक स्कूल पटना" जैसी संस्थाओं में यदि यह पुस्तक पाठ्य-ग्रन्थों की श्रेणी में रख ली जाय तो विद्यार्थियों को लाभ होगा। आपकी यह पुस्तक विहार के उन वैद्यों की आँख खोलने में सहायक सिद्ध होगी जो योग्यता, अनुभव और स्वास्थ्य रखते हुए भी आलस्यवश पुस्तक लेखन द्वारा आयुर्वेद की सेवा नहीं कर बिहार को गौरव-वञ्चित करते हैं। आशा है आप इसके बाद भी ऐसी आयुर्वेद की सेवा करते रहेंगे।

पं० शुकदेव शर्मा, M. O. L., G. A. M. S. आयुर्वेद-साहित्य-सांख्य-योग- आचार्य, प्रिंसिपल—राजकुमार आयुर्वेदिक कालेज—इन्दौर से लिखते हैं कि—

—आपकी पुस्तक अत्यन्त उपयोगी होगी इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है।

कविराज सुखराम प्रसाद B. Sc., आयुर्वेदाचार्य प्रोफेसर, गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक स्कूल, पटना से लिखते हैं—

—पं० पारसनाथ पाण्डेय की लिखी हुई एक किताब (यक्ष्मा-विज्ञान) मैंने देखी है। लेखक महोदय ने काफी परिश्रम किया है। पुस्तक अच्छी और वैद्य वन्धुओं के लिये उपयोगी है। आशा है इसका काफी प्रचार होगा।

आयुर्वेदाचार्य काव्य सांख्य पुराणतीर्थ, भिषग्भूषण पं० श्री रामदेव ओझा, मुजफ्फरपुर से लिखते हैं—

—पं० पारसनाथ पाण्डेय लिखित "राजयक्ष्मविज्ञान" नामक पुस्तक को पढ़कर प्रसन्नता हुई। लेखक ने प्रस्तुत रोग के प्राचीन और अर्वाचीन कारणोंपर साधारणतः अच्छा प्रकाश डाला है। पुस्तक उपादेय है।

आयुर्वेदाचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा शास्त्री, A. M. S. प्रोफेसर इन-चार्ज, अयोध्या शिवकुमारी आयुर्वेदिक कालेज, P. O. बेगुसराय (मुंगेर) से लिखते हैं कि—

—पं० पारसनाथ पाण्डेय, G. A. M. S. द्वारा निर्मित

"राजयक्ष्मा-विज्ञान" मैंने पढ़ा। इस पुस्तक में राजयक्ष्मा के निदान और उसकी चिकित्सा का वैज्ञानिक विवेचन किया है। लेखक का दावा है कि पुस्तक में वर्णित अधिकांश औषधें उनके वैयक्तिक अनुभव की कसौटी पर कसी जा चुकी हैं और लाभकर सिद्ध हुई हैं। लेखक का परिश्रम प्रशंसनीय है और मुझे बहुत प्रसन्नता है कि वैद्यों का ध्यान ऐसे महत्वपूर्ण विषय की ओर गया है। पारिभाषिक शब्दों के चुनाव पर विशेष विचार नहीं किया गया है, आशा है, इसका सुधार वैज्ञानिक आधार पर द्वितीय संस्करण में अवश्य हो जायगा। आशा है, वैद्य समाज तथा साधारण जन समुदाय इसे अपनाकर लेखक का उत्साह बढ़ावेंगे तथा आयुर्वेद के प्रचार में सहायक बनेंगे।

—):*:(—

लेखक के दो शब्द ।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन में मेरे जिन सहृदय मित्रों और श्रद्धेय गुरुजनों ने अपने सत्परामर्शों द्वारा मुझे प्रोत्साहित किया है, उनका आभार मैं हृदय से स्वीकार करता हूँ । इनमें प्रिय मित्र शिवनाथ प्रसाद वर्मा आयुर्वेदाचार्य, गुरुवर्य आचार्य विधुभूषण सेन जी (आयुर्वेदिक कालेज—पटना) और पं० श्री उपेन्द्रनाथ मिश्र जी 'मञ्जुल', काव्यतीर्थ, हि० साहित्य भूषण, सीतामढ़ी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । साथही इस सम्बन्ध में प्राच्य एवं प्रतीच्य वैज्ञानिकों के गवेषणापूर्ण लेखों से सहायता प्राप्त हुई है । एतदर्थ उनका भी मैं चिर-कृतज्ञ हूं । पुस्तक जैसी है सम्मुख है, इसकी परीक्षा का भार महाकवि कालिदास के शब्दों में—"हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपिवा" विवेकशील पाठक विद्वानों पर ही छोड़ता हूँ । गच्छतः स्खलनम् के अनुसार कुछ न कुछ भ्रान्तियों का होना अनिवार्य है । मानव सहज दुर्वलता को ध्यान में रखते हुए विज्ञजन त्रुटि स्वयं सुधार लेंगे और निर्दर्शनों द्वारा मेरे आगे का पथ प्रशस्त करेंगे जिससे अगले संस्करण में मैं उनका परि-मार्जन कर सकूं । कहीं कहीं मैंने पाठकों के पाठन सौकर्य के

लिये—और अपनी अपनी रुचिही तो ठहरी—जान बूझ कर व्याकरण की उपेक्षा की धृष्टता की है। यही कारण है कि राजयक्ष्मविज्ञान की जगह राजयक्ष्माविज्ञान और रोगि परिचर्या की जगह रोगी परिचर्या नाम मुझे विवश हो रखना पड़ा। मेरी यह धृष्टता गोस्वामी श्री तुलसो दास जी के स्वर में "छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बाल-बचन मन लाई" ॥ अवश्य क्षन्तव्य होगी।

—विनीत लेखक।

शुद्धि पत्र ।

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पङ्क्ति
दहिक	दैहिक	२	६
यक्ष्मा ग्रयियां	यक्ष्मा ग्रन्थियां	२	१३
विद्वान	विज्ञान		शीर्षक में
ष्ठीयति	ष्ठीवति	४	६
विवयक	विषयक	४	३
आ आदेश	आदेश	४	१४
श्रोतसां	स्रोतसां	५	२
परमेश्वर	परमेश्वर	५	१४
की	के बाद	६	१५
ब्रह्मचयेण	ब्रह्मचर्येण	११	१५
सक्रामति	संक्रामति	१२	१३
व्याघ्र	व्याप्त	१४	११
विगमाशन	विषमाशन	१५	४
सायम्म	साम्यम्	१७	३
Tissu	Tissue	१६	२०
पुष्टी	पुष्टि	२४	१८
Inflncnza	Influenza	३७	८
अवुंद	अर्बुद	३७	१०
इसके	इसके	३९	८

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पङ्क्ति
दबा	द्वा	४६	१५
बीर्य	वीर्य	४७	११
अङ्कुली ताड़न	अङ्गुली ताड़न	५५	१२
विमम्ब	विलम्ब	७१	१३
अमीचातनी:	अमीवाचातनीः	७३	१३
औयध	औषध	७३	१५
दीखने	दीखते	७७	६
काठकर	काटकर	८३	२२
अथात्	अर्थात्	८६	१५
शुद्धि त्रिषय	शुद्धि के विषय	८७	११
अत्रिस्मृनि	अत्रिस्मृति	८७	२२
सिद्धिं	सिद्धं	८६	१०
औपधि	औषधि	११२	६
आयुवेद	आयुर्वेद	११८	५
विषय	विषयक	११८	६
नाशक्र	नाशक	१२३	१३
खाने को	खाने को	१२३	१३
मनिदेश्य	मनिर्देश्य	१३०	१३
रजयक्ष्मा	राजयक्ष्मा	१३८	६
की	का	१४३	२२

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पङ्क्ति
Cogulation	Coagulation	२७	७
Softning	Softening	२७	१४
Indothelial	Endothelial	२९	१६
Lenkocytes	Leucocytes	३०	१६
Symphatic	Lymphatic	३१	१३
Abscessformetion	Abscessformaticn	३३	१७
Puls	Pulse	३४	१२
Inflnenza	Influenza	३७	८
Mitrol	Mitral	३७	१
Inforction	Infarction	३७	१२
Leukaomia	Leukaemia	३७	१७
Histeria	Hysteria	३८	१८
monal	monale	३८	१२
Corpuseles	Corpuscles	४३	१२
Absses	Abscess	४६	८
Ranchi	Ronchi	५६	९
Caveruons	Cavernous	५७	९
Peetorelogny	Pectrologuy	५७	२
Bolcd Pressar	Blood Pressure	५९	१६
Albumine	Albumin	५९	१९
Stathescope	Stethescope	६०	५

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पङ्क्ति
Vitamine	Vitamin	६७	शीर्षक
Equliptus	Eucalyptus	११३	१
Evulsion	Avulsion	११६	१६
पचत्पग्नि	पचत्यग्नि	५	४
बोभाइना	बोभाइन	१३	८
विलेपि	विलेपी	४१	१
स्वेदश्च	स्वेदश्च	४२	१३
सन्तप्तवक्षो	सन्तप्तवक्षाः	५०	६
ट्यु र्वकलिन	ट्यु बर्कुलिन	६०	११
समातीतानी	समातीतानि	७६	१६
दूध पक्व	दुग्ध पक्व	८७	५
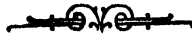
समर्पण

मैं वैद्य समाज, आरोग्य जिज्ञासु और क्षयरोगपीड़ित जनताजनार्दन की सेवा में "राजयक्ष्मा-विज्ञान" की पुष्पाञ्जलि भक्ति पूर्वक समर्पण करता हूँ। इस प्राच्य एवं प्रतीच्य चिकित्सा विज्ञान विवेचनात्मक निवन्ध से यदि विश्व के भाई-बहनों ने कुछ भी लाभ उठाया तो मैं अपने श्रम को सफल समझूंगा।

विनीत लेखक—

प० पारसनाथ पाण्डेय (शाकद्वीपीयः)

स्नातक — गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक कालेज पटना।

विषय सूची।

विषय	पृष्ठ संख्या

राजयक्ष्मा विज्ञान

राजयक्ष्मा का इतिहास और प्रतिकार

पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार यक्ष्मा रोग के सर्व प्रथम विशेषज्ञ हिपोक्रेटिस और गेलन नामक विद्वान थे। इस रोग का वर्तमान इतिहास ईसा के ४६० से ३७७ वर्ष पूर्व से आरम्भ होता है। हिपोक्रेटिस ने चिकित्सा के बहुत से अङ्गों पर प्रकाश डाला है इनके लेखों से पता चलता है कि इन्हें यक्ष्मा रोग के सभी लक्षणों की जानकारी थी। उस समय में इसे अन्य रोगों से, जिनमें शारीरिक शक्तियों का क्षय एक प्रधान लक्षण हो, अलग नहीं माना जाता था। किसी रोग से हृदय की शक्तियों के नष्ट होने पर अङ्गुलियों का प्रान्त भाग सूज जाता है, इस बात को हिपोक्रेटिस जानते थे। उनकी यह धारणा थी कि शारीरिक शक्तियां रक्त, पित्त और कफ पर अवलम्बित हैं। इनके न्यूनाधिक होने से ही रोग पैदा होता है, यही विश्वास चिकित्सकों के मस्तिष्क को चिरकाल-पर्यन्त प्रभावित करता रहा, क्यों न हो ? भारतीय चिकित्सा-विज्ञान तो इस बात का पहले से ही निर्देश कर रहा है। हिपोक्रेटिस के बाद गेलन १३० से २०० ई० तक के

लेखों का पता चलता है। गेलन पहले-पहल यक्ष्मा रोग को संक्रामक (Epidemic) समझता था। इसको विश्वास था कि फुस्फुसों (Lungs) में व्रण होने से क्षय रोग उत्पन्न होता है। गेलन के बाद १६ वीं शताब्दी के आरम्भ तक यूरोपीय वैज्ञानिक वायुमण्डल अन्धकार पूर्ण है। पुरानी बातें वैज्ञानिकों को आगे बढ़ने नहीं देती थीं। कुछ दिनों के बाद उक्त वायुमण्डल का परिवर्तन हुआ। १६१४ ई० से लेकर १६७२ ई० के अन्दर सिल्विअस ने एक पुस्तक लिखी जिसमें इन्होंने क्षय रोग के लक्षण के विषय में कास, ज्वर और दहिक ह्रास होना लिखा है। यह लक्षणोक्ति महर्षि चरक के कथन से सर्वथा समता रखती है। यथा—"प्रतिश्यायं ज्वरं कासं अङ्गसादं शिरोरुजम्"। सिल्विअस ने ही सर्व प्रथम यक्ष्माग्रन्थि (Tubercle) शब्द का प्रयोग किया। सिल्विअस कहता था कि यक्ष्माग्रथियां फुस्फुसस्थ लसिका ग्रन्थियां (Lymph glands) हैं जो रोग वसात् सूजजाती है और इनके घुलने से फुस्फुस में गड्ढे हो जाते हैं। सिल्विअस के बाद १८ वीं शताब्दी में वेली का प्रादुर्भाव हुआ तो उन्हों ने बतलाया कि फुस्फुसों में ग्रन्थियां नहीं हैं। यह रोग वस्तुतः फुस्फुस तन्तुओं में होता है। तदनन्तर १७८१ से १८२६ ई० के लगभग में लेनेक* का आविर्भाव हुआ तो आपने बतलाया कि फुस्फुस में अथवा लसिका ग्रन्थि में पहले यक्ष्मा रोग के दाने निकलते हैं, तत्पश्चात् फुस्फुस में व्रणाकरण क्रिया होती है जिससे फुस्फुस

* Renelaennec

मुलायम तथा पीला पड़ जाता है। जब घुलनेका अतिक्रम होता है तो फुस्फुस में गड्ढे पड़ जाते हैं। यक्ष्मा रोग में रक्तस्राव होना इन्हीं क्रियाओं का फल स्वरूप है। लैनेक की कही यह बात महर्षि चरक की निम्न लिखित उक्ति से एकदम मिलती जुलती है जैसाकि - "ततःक्षणनाच्चैवोरसो विषमगतित्वाच्च वायोः कण्ठस्योद्‌ध्वंसनात्कासः संजायते कास प्रसंगात् उरसि क्षते सशोणितंष्ठीवति। शोणित गमनाच्चास्य दौर्बल्यमुपजायते", इत्यादि। लैनेक की मृत्यु के बाद एक रूसी वैज्ञानिक 'वर्चो' की प्रसिद्धि हुई, इसने पूर्वोक्त विद्वानों के सारे कृत्यों पर पानी फेर दिया। यह अद्वितीय प्रभावशाली था। इसने इस मन्तव्य का प्रचार किया कि— यक्ष्मा गांठें अन्य रोगों के द्वारा भी पायी जाती हैं। इसी मत का अनुयायी निमेयर ने तो यहां तक कह डाला कि किसी भी क्षय रोगी (रस रक्तादि विहीन) को सबसे अधिक भय है कि वह यक्ष्मा पीड़ित हो जाय। अब इन बातों को निर्मूल बतलानेवाला विलेमिन १८६८ ई० में पैदा हुआ, तो उसने यक्ष्मा ग्रन्थि (Tubercle) को क्षुद्र पशुओं में लगाकर उन्हें यक्ष्मा रोग के सभी लक्षणों से आक्रान्त दिखलाकर सिद्ध कर दिया कि वास्तव में यक्ष्मा रोग का अस्तित्व अलग ही है। तदनन्तर १८८२ ई० में काक की प्रसिद्धि हुई, तो इसने टी० बी० (यक्ष्मा जीवाणु) का पता लगाया। इसके बाद अर्लिक ने जीवाणुओं को अम्लग्राही बतलाया। काक ने १८८६ ई० में टी० बी० टौक्सिन (यक्ष्मा-जीवाणु-विष) का आविष्कार किया और १९०१ ई० में

यह सिद्ध कर दिखाया कि क्षय जीवाणु मानुषिक और पाशविक दो प्रकार के होते हैं। संक्षेपतः यह इस रोग विषयक पहले का पश्चिमीय इतिहास है। चिकित्सा विषयक पहले का पश्चिमीय इतिहास बड़ाही कौतुहलजनक है। मध्यकालिक प्रत्येक यूरोपियन डाक्टर अपनी अपनी विचित्र रीतियों से यक्ष्मा रोग की चिकित्सा करते थे। १७ वीं शताब्दी तक प्राप्त औषधियों के योग तो समय समय पर मनोरञ्जन की सामग्रियां हैं।
आप एक की नकल तो पढ़ें ?

केंचुवे औरघोंघे का जल	१॥ औंस
अफीम का मद्यार्क	२ ड्राम
वायलेट का शर्वत	१ औंस

इन्हें मिलाकर प्रतिदिन सोने के समय १ चम्मच पीलिया करे। किसी योग में सुअर का जूँ, किसी में हड्डी एवं धान्य कीटों का पेर मिलाने का भी आदेश रहता था। कहीं कहीं विष भी मिला दिया करते थे और ऐसे मन चाहे कार्यों के फल स्वरूप मर्ज और मरीज़ दोनों ही को ठिकाने लगाते रहे। इतना ही नहीं, कितने यक्ष्मा पीड़ितों को जुलाब देकर और रक्त निकाल कर इन चिकित्सकों ने अनेक हत्यायें की। अन्ततो गत्वा इन चिकित्सकों से जनता में घृणा फैल गई। यह बात इन्हें नहीं मालूम थी कि यक्ष्मा रोगी का जीवन मल पर निर्भर रहता है। जैसाकि महर्षि चरक ने लिखा है—

यथास्वेनोष्मणा पाकं शरीरे यान्ति धातवः।

स्रोतसा च यथास्वेन धातुः पुष्यति धातुना ॥
स्रोतसां सन्निरोधाच्च रक्तादीनाञ्च संक्षयात्।
धातूष्मणां चापचयात् राजयक्ष्मा प्रवर्तते ॥
तस्मिन् काले पचत्यग्निर्यदन्नं कोष्ठमाश्रितम्।
मली भवति तत्प्रायः कल्पते किञ्चिदोजसे ॥
तस्मात्पुरीषं सं रक्ष्यं विशेषाद्रा जयक्ष्मिणः।
सर्वधातु क्षयार्तस्य वलं तस्यहि विड्वलम् ॥ 'चरक"

अस्तु। आजकल डाक्टर लोग औषधियों में विशेषतः मो-लगार्ड के बनाये हुए सेनोक्राइसिन नामक औषधि का यक्ष्मा रोग में प्रयोग करते हैं। सोने के द्वारा यह औषधि जब प्रस्तुत की गयी तो एक बार वैज्ञानिक दुनिया में चहल-पहल हुई, लेकिन इससे भी यक्ष्मा रोग को परास्त करने की चेष्टा विफल निकली। आज सारा वैज्ञानिक समाज यक्ष्मा रोग की एक विशेष दवा की खोज निकालने में व्यस्त है। परमेश्वर करे ये अपने उद्योग में सफल हों। अब आप यक्ष्मारोग के भारतीय इतिहासपर ध्यान दें।

आर्यों के बड़े बड़े पुस्तकागार एवं असंख्य पुस्तकें कितनी ही बार भष्मसात् कर दी गयी हैं। अतएव हमारे विज्ञान विशेष अग्निदेव के उदरस्थ हैं तथापि कतिपय ऐतिहासिक बातें आजभी उपलब्ध हैं जिन्हें यथाशक्ति आपके सामने रखता हूं। प्राचीन पुस्तकों के पढ़ने से हमें मालूम होता है कि क्षय-रोग आर्यावर्त में सर्व प्रथम राजा चन्द्र को हुआ था और आपकी बीमारी अश्विनी-

कुमार नामक वैद्यों की चिकित्सा से अच्छी हुई थी जैसाकि तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है। यथा—

प्रजापते स्त्रय स्त्रिंशद् दुहितर आसन् ताः सोमाय राज्ञे ददात् तासांरोहिणीम् एवोपैत्। तं यक्ष्मआर्च्छत्। तद्राजयक्ष्मस्य जन्म। यत् पापीयान् अभवत्। तत्पाप यक्ष्मस्य। यज्जाया-भ्यो विदन्त् तज्जायेन्यस्य। य एवं एतेषां जन्म वेद् नैनम् एते यक्ष्मा विन्दति। इत्यादि (तै० स० २–३–५–२)

प्रजापति के ३३ पुत्रियां थीं। वे इन सबों को राजा चन्द्र के साथ ब्याह दिये। चन्द्रमा अपनी स्त्री रोहिणी में विशेष संभोगासक्त होकर यक्ष्मा रोग से पीड़ित हुए। यही यक्ष्मा रोग की प्रथमोत्पत्ति कही जाती है। इस प्रकार जो इस रोग को उत्पत्ति जानता है वह यक्ष्मा रोग के फेर में नहीं आता है। आधुनिक इतिहास तत्व वेत्ता राजा चन्द्र का काल ईसा से ३००० वर्ष पूर्व मानते हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी को चौबीसवीं पीढ़ी में प्रादुर्भूत रघुवंशी महाराज अग्निवर्ण यक्ष्मा रोग के ही शिकार हुए। यथा—

आमयस्तु रतिराग संभवो दक्षशाप इव चन्द्रमक्षिणोत्।
दृष्ट दोषमपितन्न सोत्यजत्संगवस्तुभिषजामनास्रवः ॥
स्वादु वस्तु विषयैर्हृतस्ततो दुःख मिन्द्रिय गणोनिवार्यते।
तस्य पाण्डु वदनाल्प भूषणासावलम्ब गमना मृदुस्वना ॥

राजयक्ष्म परिहानिराययौ कामयान समवस्थया तुलाम् ।

(रघुवंश काव्य)

आधुनिक अनुसन्धान के अनुसार महाराजा अग्निवर्ण जी का काल ईसा से लगभग १२०० वर्ष पूर्व है ।

महाभारत में देखिये, इसी रोग ने "महाराजा विचित्रवीर्य" को मारकर शान्तनु सन्तति को निर्मूल कर दिया था। यथा—

अथ काशिपतेः कन्या वृणाना वैस्वयम्वरम् ।
भीष्मो विचित्रवीर्याय प्रददौ विक्रमाहृताः ॥
तासाम्-अम्बिकाम्बालिके भार्ये प्रादाद् भ्रात्रे यवीयसे ।
तयोः पाणी गृहीत्वातु रूप यौवन दर्पितः ॥
ताभ्यां सह समासप्तविहरन्पृथिवी पतिः ।
विचित्रवीर्यस्तरुणो यक्ष्मणा* समगृह्यत ॥
जगामास्तमिवादित्यः कौरव्यो यम सादनम् ।

(महाभारत आदि पर्व)

विचित्रवीर्य का काल ऐतिहासिक लोग ईसा से ११०० वर्ष पहले मानते हैं। भारतीय युद्ध (महाभारत) का काल ईसा से १००० वर्ष पूर्व हैं। देखिये, पार्गिटर साहब लिखित प्राचीन भारतवर्ष का इतिहास। (Ancient Indian Historical Tradition by F. E. Pargiter)

अस्तु । इन प्रमाणों से निश्चित है कि भारतवासी यक्ष्मा को अनन्त काल से जानते हैं। कुछ पाश्चात्य पण्डित इस देश

---

* Consumption.

की महत्ता को जानते हुए भी बहुत सी बातों में हमें अनजान बनाने का असफल प्रयास करते हैं। जो प्रायः प्राकृतिक है। लेकिन सत्यग्राही सज्जन भी अनेक यूरोपीय इतिहास में विद्यमान हैं जो इस देश की महनीयता मुक्त हृदय से मानते हैं। यथा—

अमेरिका देश के सुप्रसिद्ध डाक्टर कारपेण्टर साहब लिखते हैं कि अग्निवेश, चरक, सुश्रुत एवं अन्यान्य महर्षियों की आविष्कृत चिकित्सा प्रणाली को देखने से उनकी दिव्य स्मृति हमें आज भी होती है, क्योंकि अनेक सदियों के पहले उक्त महर्षियों की लिखो पुस्तकों का अनुवाद अरब, यूरोप अमेरिका और ग्रीस आदि देशों में लैटिन, अर्बी, यूनानी आदि भाषाओं में अनेक बार हो चुका है। इससे हमारी चिकित्सा पुस्तकों में भी भारतीय महर्षियों की प्रचुर विभूतियां विद्यमान हैं।

प्रोफेसर मैक्डानल का कहना है कि हिन्दू वैद्य विद्या का अरबों पर ७०० ई० के लगभग में प्रभाव पड़ा। यह विचारणीय है, क्योंकि बग़दाद के खलीफा ने कितनी ही संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद कराया था।

राजयक्ष्मा रोग की अवतरणिका लिखते हुए महर्षि चरक ने लिखा है कि— "लक्ष्मा चतुर्विधं हेतुं समाविशति मानवान्"।

च० चि० अ० ८ श्लो० १०

चार कारणों से यह रोग मनुष्यों को होता है, जिनमें वीर्य-नाश प्रधान कारण है। जैसाकि—

रोहिण्यामतिसक्तस्य शरीरं नानु रक्षतः।

रजोऽन्धमबलं दीनं यक्ष्मा शशिनमाविशत् ॥

पतञ्जलिः (चरकर्षि)

रजोगुण से कर्तव्याकर्तव्य-विमूढ़ अपनी देह की रक्षा में अनवधान स्त्री संभोगासक्त निर्बल एवं कृश राजा चन्द्र को यक्ष्मा रोग हो गया। क्यों न हो ? यथार्थ में शुक्र के क्षय होनेपर शारीरिक रोग निवारक शक्ति* घट जाती है और ऐसा होने पर सभी रोग आक्रमण कर सकते हैं, जैसाकि कहा है--क्षीणे शुक्रे सर्व रोगाः भवन्ति।

उपर्युक्त महर्षि चरक का काल प्राच्य और प्रतीच्य ऐतिह्यासिकों ने इस समय से २००० वर्ष या कुछ और अधिक पूर्व माना है। निम्नलिखित मन्त्र से वेद भी उपर्युक्त सन्दर्भ का समर्थन करता है। यथा—

यः कीकसाः प्रशृणाति तलीद्यमव तिष्ठति।
निर्हास्तं सर्वं जायान्यं यः कश्च ककुदिश्रितः ॥

अथर्ववेद का० ७ अ० ७ सू० ८१

सा० भा० यो राज यक्ष्माख्यो रोगः कीककसाः अस्थीनि प्रसृणाति व्याप्नोति। यश्च रोगः तलीद्यम् तलीद् इति आन्तिक नाम। अन्तिकेभवं तलीद्यम्। :अस्थिसमीप गतं मासं अवतिष्ठति अवकृष्य तिष्ठति मांसं शोषयतीत्यर्थः। यः कश्चिद् दुःसाध्यो राजयक्ष्माख्यो रोगः ककुदि ककु-

---

* Immunity डाक्टर त्रिलोकीनाथ ने इसे "रोगक्षमता" लिखा है।

न्नाम ग्रीवा पर भागः तस्मिन् श्रितः संश्रितः ककुत्स्थानं तनुकुर्वन् योरोगोऽस्ति तं सर्व शरीर गत सर्व धातु शोपकं जायान्यं निरन्तर जाया स्त्रीसम्भोगेनजायमानं क्षयरोग-निर्हाः निर्हरतु। जायान्य शब्दो रोग विशेष परः। सच्च जाया सम्बन्धेन प्राप्नोति इति "तैत्तिरीयके" समाम्नायते।

जो राजयक्ष्मा रोग— रस, रक्त आदि धातुओं से लेकर हड्डियों तक फैलनेवाला और दुश्चिकित्स्य है, जो फुस्फुसों के उपरी भाग में अवस्थित होकर उस वक्ष-प्रदेश को सिकोड़ देता है। उस सम्पूर्ण शारीरिक धातुओं को सुखानेवाले एव निरन्तर मैथुन से पैदा होनेवाले रोग को निकाल डालें। जायान्य शब्द रोग विशेषवाची है और वह स्त्री सम्बन्ध से पकड़ता हैं, जैसाकि तैत्तिरीयोपनिषद् से जाना जाता है। अस्तु, कुछ पाठकों को सन्देह होगा कि लेखक इन वेदादि बचनों से यक्ष्मा रोग होने के मुख्य कारण शुक्रक्षय को लिखते हैं, तो यह भला यह रोग स्त्रियों को क्योंकर होता है ?

उत्तर— बहुतों को मालूम होगा कि स्त्रियों में शुक्र और उसके क्षरण करनेवाली डिम्ब-ग्रन्थियां (Ovaries glands) गर्भाशय के दोनों पार्श्व में संसक्त रहती हैं और मैथुन के समय स्त्रियां भी इन्हीं डिम्बग्रन्थियों से शुक्रपात करती हैं। यथा—

योषितोऽपि स्रवत्येवं शुक्रं पुंसः समागमे।

(सुश्रुत शोणितवर्णनीयाध्याये)

स्त्रियों के इस शुक्र का नाम चरक ने बीजार्तव लिखा है।

इससे निश्चित है कि अतिरिक्त एवं कुसमय में मैथुन करना स्त्री और पुरुष दोनों के लिये घातक हैं।

इसलिये उष्णता प्रधान भारतवर्ष में कम से कम १६ वर्ष की आयु तक स्त्रियों को ब्रह्मचर्य पालन की अनिवार्य आवश्यकता है और पुरुषों को २० वर्ष की आयु तक। आप देखें – शुक्ररक्षा की उपादेयता बतलाते हुए पशु तक के ब्रह्मचर्य जीवन की सफलता का वेद ने कैसा सुन्दर संकेत किया है।

कन्या ब्रह्मचर्येण युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वोघासं जिगीर्षति॥

(अथर्ववेद का० ११ अ० ३ सू० ७)

सा० भा०—अत्रापि ब्रह्मचर्यं प्रशस्यते। कन्या अकृत विवाहास्त्री ब्रह्मचर्यं चरन्ती तेन ब्रह्मचर्येण युवानं युवत्व गुणोपेतं उत्कृष्टं पतिं विन्दते लभते। किंबहुना पशु जातिरपि ब्रह्मचर्येण स्वाभिलषितं फलं लभते इति आह अनड्वान् इति। अनड्वान् अनो वहन् पुङ्गवः ब्रह्मचर्येण ऊर्ध्वरेतस्कत्वादिना धर्मेण अनोवहनादिकं स्वकार्यं निवर्तयन् उत्कृष्टं पतिं लभते। तथा अश्वः ब्रह्मचर्येण घासं भक्षणीयं तृणादिकं जिगीर्षतिभक्षितुमिच्छति एवं वेगेन धावन्न व्यथते।

अर्थात्—वैदिक काल में पर्दा प्रथा नहीं थी। उस समय में वर और कन्या की रुपयों से कीमत नहीं होती थी, इसलिये कहा है कि कन्या भी ब्रह्मचर्य की महिमा से ही योग्य पति पाती

हैं, अधिक क्या, पशु भी ब्रह्मचर्य पालन से ही अपने मनोरथ पाते हैं। बैल ब्रह्मचर्य के कारण ही भार वहनादि कार्यों का सम्यक् सम्पादन करते हुए योग्य मालिक पाता हैं। घोड़ा ब्रह्मचर्य से ही घास खाकर भी तेजी से दौड़ता हुआ व्यथा अनुभव नहीं करता है।

और भी— ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।

(अथर्ववेद)

यानी—ब्रह्मचर्य साधन से ही देवताओं ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की।

राजयक्ष्मा की उत्पत्ति विवेचना

राज यक्ष्मा रोग संक्रामक है। जैसाकि कहा भी है—

कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।

औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥

(सु० नि० अ० ५ श्लो० ३०)

यहां रेखाङ्कित जो शोष शब्द है वह संक्रामक रोगों की

गणना में आया है और वह यक्ष्मा का ही पर्यायवाची है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान यक्ष्मा का कारण वैसिलस ट्यूवर्कुलोलिस (Bacillus Tuberculosis) नामक जीवाणु को मानता है। ये जीवाणु सर्वत्र वायुमण्डल में व्याप्त हैं और इनके चार प्रभेद होते हैं। यथा -

(१) ह्यूमन टाइप (Humantype)—यह मनुष्यों में पाया जाता है। इससे फुस्फुस में रोग होता है।

(२) वोभाइना टाइप (Povinetype)—यह गाय, भैंस और बैलों में पाया जाता है। इससे रोग त्वचा, अस्थि और लसिका ग्रन्थियों (Lymphatic glands) में होता है।

(३) एभियन टाइप (Aviantype) यह पक्षियों में पाया जाता है।

(४) पिसाइन टाइप (Pisinetype)—यह मछलियों में पाया जाता है।

नोट:—नम्बर ३ और ४ के जीवाणु का आक्रमण मनुष्यों पर होता है या नहीं यह बात अभीतक अनिश्चित है।

अस्तु। सहस्र वर्ष व्यापी परकीय आघतों से हताहत कथंचित् उज्जीवित प्राय आयुर्वेद के अवलोकन करने पर आज भी स्पष्ट ज्ञात पड़ता है कि प्राचीन आयुर्वेदज्ञ इस जीवाणु (T. B.) को भली भांति जानते थे। जैसाकि कहा है—

"यो गोषुयक्ष्मः पुरुषेषुयक्ष्मः तेन त्वं साकमधराङ्परेहि"

(अथर्व० कां० १२ अ० २ सू० १)

अर्थात् हे औषध? जो यक्ष्मा रोग, गौओं में तथा मनुष्यों में है उसके साथ तू निकल कर दूर चला जा। पुनश्च —

पक्षी जायान्यः पतति स आविशति पूरुषम्।

(अथर्व० का० ७ अ० ७ सू० ८१)

सा० भा० जायान्यः क्षयरोगः पक्षी पक्षवान् पतत्री भूत्वा। पतति सर्वत्र चरति। सरोगः पूरुषम् पुरुषम् आविशति सर्वतः प्रविशति। पुरुषस्य कृत्स्नं शरीरं व्याप्नोतीत्यर्थः।

पक्षियों की तरह क्षय रोग समस्त वायुमण्डल में परिभ्रमण करता है। वह चरों तरफ से मनुष्य के शरीर में प्रवेश करता है, एवं सारी देह में व्याप्त हो जाता है।

इस तरह स्पष्ट है कि प्राचीन आयुर्वेदज्ञों को उक्त जीवाणु का परिज्ञान और उसकी संक्रामकता अच्छी तरह मालूम थी। महाराज अग्निवर्ण जी का शव संस्कार भी इस बात का ऐतिहासिक प्रमाण है। यथा—

तं गृहोपवन एवं संगता पश्चिमक्रतु विदा पुरोधसा।
रोग शान्तिमपदिश्य मन्त्रिणः संभृते शिखि निगूढमादधुः॥

(रघुवंश काव्य)

अन्त्येष्टि विधि को जाननेवाले पुरोहितों के साथ मन्त्रिगण ने रोग फैलने नहीं पाये इस उद्देश्य से, मृतक को प्रखर लपट वाली आग के बीच निगूढ़ कर उपवन (महल के समीप का बाग) में ही जलाकर भस्म कर दिया।

यूरोपीय विद्वानों ने इस रोग का प्रधान कारण (Principal cause) जीवाणु माना है लेकिन समस्त चिकित्सा पद्धतियों का का आदि स्रोत आयुर्वेद जीवाणुओं का पूर्ण ज्ञान रखते हुए भी यक्ष्मा का प्रधान कारण वेगरोध, क्षय, साहस और विषमाशन जन्य त्रिदोषकी विषमता यानी रोग निवारक शक्ति (Immunity) का ह्रास माना है) जैसाकि—

वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात् ।
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतु चतुष्टयात् ॥

(चरक)

(१) वेग - मल मूत्रादि वेग, जिसको रोकने से यक्ष्मा रोग होता है ।

नोटः—पैखाना, पेशाब, छींक, डकार, जँभाई, अपानवायु (Wind) वीर्य, आंसू, वमन, भूख, प्यास, श्वास और निद्रा इन १३ वेगों के रोकनेसे "उदावर्त" रोग होना भी लिखा है । यथा—

वात विरामूत्र जृम्भाश्रु क्षवोद्गार वमीन्द्रियैः ।
क्षुत्तृष्णोच्छ्वास निद्राणां धृत्यो दावर्तसम्भवः ॥

(सु० उ० त० अ० ५५)

इससे मालूम पड़ता हैं कि यक्ष्मा रोग के होने में अपान वायु, विष्ठा और मूत्र इन तीनों का एकसाथ रोकना यक्ष्मा कारक है । जैसाकि चरकर्षि ने कहा है—

वेगोऽत्र वात मूत्र पुरीषाणि निगृह्णाति यदानरः ।

(च० अ० ८ श्लो० १७)

जब मनुष्य अपानवायु, मूत्र और मल को रोकता है तो वह क्षय रोग का शिकार होता है।

भारद्वाजने इस बात को एकदम स्पष्ट कर दिया है। यथा—

> वात मूत्र पुरीषाणां ह्री भयाद्यैर्यदानरः।
> वेगं निरोधयेत्तेन राजयक्ष्मादि सम्भवः॥

जब मनुष्य लज्जा और भय के कारण अपान वायु मल और मूत्र को रोकता है तो उसे यक्ष्मा आदि रोग होते हैं।

(२) क्षय—धातु क्षय से यक्ष्मा रोग उत्पन्न होता है। अत्यन्त स्त्री सम्भोग, अप्राकृतिक मैथुन, अति उपवास और अति ईर्ष्यादि जो धातुओं के क्षयकारक कर्म हैं उनसबों को क्षय शब्दसे समझना चाहिये।

(३) साहस - अपने से बली के साथ मल्ल युद्धादिक या हूँ पादिक कार्य।

(४) विषमाशन—अत्यल्प अत्यधिक या अकाल भोजन।

ये सभी पूर्वोक्त कर्म क्षयकारक हैं। यक्ष्मा रोग के इससे भिन्न जितने कारण हो सकते हैं वे सभी उपरोक्त चारों कारणों के ही अन्तर्भूत होंगे।

इस विवेचनात्मक अनुसन्धान से क्षय रोग की उत्पत्ति में जीवाणु (T. B.) की प्रधानता कहांतक यथार्थ है नहीं कहा जा सकता, वास्तव में रोग निवारक शक्ति जब पूर्वोक्त कारणों द्वारा क्षीण हो जाती है तब रोग की उत्पत्ति होती है। आयुर्वेद

रोग निवारक शक्ति को अरोगता (दोष साम्यता) शब्द से कहा है। जैसाकि—

रोगस्तु दोष वैषाम्यं दोष सायम्मरोगता।

(अष्टाङ्ग हृदय)

अर्थात्—दोष - बात, पित्त, श्लेष्म, की विषमता यानी प्राकृतिक अवस्था में परिवर्तन होना रोग है और दोषों का स्वाभाविक रूप में रहना आरोग्यता (तनदुरुस्ती) है।

इससे निश्चित है कि यक्ष्मा रोग का प्रधान कारण वेग रोध आदि जन्य त्रिदोष की विषमता (रोग निवारक शक्ति का ह्रास) है क्योंकि जीवाणुओं के सर्वत्र वायुमण्डल में व्याप्त रहने पर भी सभी व्यक्ति रोग पीड़ित नहीं पाये जाते और न सभी यक्ष्मा रोगियों में जीवाणु ही पाये जाते हैं। जैसाकि डाक्टर "सरजेम्स गुडहार्ड" ने लिखा है कि—मेरे अस्पताल के प्रतिशत ३० यक्ष्मा रोगियों में जीवाणु नहीं पाये गये। निष्कर्ष यह है कि वेग रोध आदि कारणों से जब रोग निवारक शक्ति क्षीण पड़ जाती हैं तब शरीरस्थ 'विजातीय द्रव्य (Forcign matter)' को यथा काल शरीर से बाहर नहीं कर पाती है इस कारण यह विजातीय द्रव्य शरीर स्रोतों में परिभ्रमण करता हुआ फुस्फुस में आकर उसके सूक्ष्म स्रोतों में अवरुद्ध हो विदग्ध होकर अपने आस पास के टिशुओं (Tissü-a fabric formed of cells) को सड़ाते हुए जीवाणु और पूययुक्त बलगम के रूप में अनेक प्रकार का

खांसी के वेग के साथ बाहर निकलता है तथा तीन छः या ग्यारह रोगों का समष्टि रूप यक्ष्मा रोग को उत्पन्न करता है। जैसाकि कहा है—

रसः स्रोतःसु रुद्धेषु स्वस्थानस्थः विदह्यते।
स ऊर्ध्वं कासवेगेन बहुरूपः प्रवर्तते॥
जायन्ते व्याधयश्चातः षडेकादशथा पुनः।
येषां सङ्घातयोगेन राजयक्ष्मेति कथ्यते॥

(चरक० चि० अ० ८ श्लो० ४०)

भावमिश्र कृत सं० भा० - स्वस्थानस्थः हृदयस्थः। कासं विनापि रसक्षयो भवति। मार्गावरोध कुपित वातेन रसस्य शोषणात्॥

नोटः—खांसी की प्रतिक्रिया का प्रभाव फुस्फुसों पर पड़ता है और श्लेष्म विशेषतः फुस्फुसों से ही होकर बाहर आता है न कि हृदय से इसलिये "स्वस्थानस्थः" शब्द से फुस्फुसस्थः यानी फुस्फुसों में रहनेवाला समझना चाहिये क्योंकि प्रत्यक्ष परीक्षणों से भी सिद्ध है कि फुस्फुस ही रोगाक्रान्त होता है। हृदय नहीं।

पाठक! देखिये निम्नाङ्कित वेद का मन्त्र भी इस यथार्थ विवेचन का कितना सबल समर्थन करता है। यथा—

तक्मन् भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह।
पाम्पा भ्रातृव्येण सह गच्छामु मरणम् जनम्॥

(अथर्व० का० ५ अ० ५ सू० २२)

(तक्मन) हे ज्वर ? तू (भ्रात्रावलासेन) अपने भाई कफ के साथ (स्वस्रा , और अपनी बहन (कासिकया सह) खांसी के साथ (अमुं अरणं-जनं गच्छ) इस मल (Foreign matter) युक्त मनुष्य के पास चलाजा ।

भावार्थ यह है कि—जो मनुष्य अपने शरीर की अन्तः बाह्य शुद्धता में सावधान नहीं रहता है उसे ज्वर और साथ ही साथ खांसी, कफ व यक्ष्मा रोग भी घेर लेते हैं ।

इस आलङ्कारिक वर्णन में कफ को ज्वर का भाई, खांसी को बहन और यक्ष्मा को भतीजा बतलाना कितनी सुन्दर कल्पना है । पाठक स्वयं इसका अनुभव कर सकते हैं ।

अस्तु । इस वैदिक वचन से निर्विवाद सिद्ध है कि पूर्वोक्त चार कारणों (वेग रोधादि) से रोग निवारक शक्तिहीन मलयुक्त मनुष्य को ही यक्ष्मा रोग होता है । इसलिये आयुर्वेद अपने प्रभात काल (Vedic Period) से ही वेगाविसंधारण, धातु-रक्षा, साहस वर्जन, हिताहार विहार सेवी, मिताशी, कालभोजी एवं जितेन्द्रिय होने का सदुपदेश कर रहा है जिससे लाभ उठाना मनुष्यमात्र का अनिवार्य कर्तव्य है । जैसाकि कहा है—

सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनु पालयेत् ।
तदभावेहि भावानां, सर्वाभावः शरीरिणाम् ॥

(चरक नि० अ० ६ श्लो० १०)

अर्थात्—सभी आडम्बरों को छोड़कर शरीर की रक्षा करें क्योंकि शरीर के नष्ट होनेपर कुछ भी नहीं हो सकता है।

तथा च—

आहारस्य परंधाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षयेह्यस्य बहून् रोगान्मरणंवा नियच्छति॥
(चरक० नि० अ० अ ६ श्लो० १५)

राजयक्ष्मा की उत्पत्ति में सहायक कारण

यह रोग अधिकतर १५ से ४५ वर्ष की आयु तक दिखायी देता है, परन्तु वाल्यावस्था और वृद्धावस्था में भी हो सकता है।

[क] वंश या जाति—संसार में कोई भी वंश या जाति राजयक्ष्मा से बचने के लिये समर्थ नहीं हो सकती हैं। यह रोग अधिकतर सभ्य व्यक्तियों में होता है और जो आधुनिक सभ्यता से दूर हैं उनमें यह प्रायः नहीं पाया जाता है, किन्तु जब इनका सम्बन्ध सभ्य मनुष्यों के साथ होता

हैं तो उससे जो रोग इनमें होता है—वह सभ्य लोगों की अपेक्षा अधिक घातक होता है। पशुओं में यह रोग विशेषतः गोजातिय को होता है।

[ख] पेशा—जिनलोगों को खराब हवा में जिसमें पत्थर, कोयले और धातुओं के सूक्ष्म कण होते हैं, काम करना पड़ता है वे लोग शीघ्र बीमार पड़ते हैं। धूली एवं दुर्गन्ध युक्त हवा का प्रभाव भी यक्ष्माकारक होता हैं।

[ग] परिस्थिति—अधिक जन सम्पर्क में रहना, सफाई, सूर्य-प्रकाश तथा स्वच्छ वायु की कमी। इन कारणों से प्राणियों की प्राण शक्ति घट जाती है और उनपर क्षय-जीवाणु आक्रमण करते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ .रोगों के परिणाम स्वरूप भी यक्ष्मा रोग हो जाया करता है।

निम्नलिखित रोग और अवस्थायें इस रोग की उत्पत्ति में सहायक होती हैं—

रोमान्तिका (Measles), लघु श्वास नाड़ी प्रदाह (Broncho Pneumonia), कुक्कुर खांसी (Whooping Cough), श्लेष्मक ज्वर (Influenza), कामला (Leukaemia), फुस्फुसीय रक्तवाहिनियों का अवरोध (Pulmonary Stenosis), मधुमेह, काला अज़ार (Kala-Azar), विषमज्वर (Malarial Fevers), यकृद्दाल्युदर, हस्तमैथुन, स्त्री सम्भोगाधिक्य, पारा के दोष, मानसिक अवसाद, अधिक प्रसव, अधिक

परिश्रम, रात में जागना, अल्पायु में विवाह होना, ब्रह्मचर्य को विकृत रखना, कुल का दोष, अत्यधिक दूध पीना, फिरङ्ग (Syphilis) के दोष, निकट सम्बन्धि के साथ ब्याह, गन्दी जगहों में वास, जन्मजात दोष आदि ॥

क्षयजीवाणु (T. B.) प्रवेश

सूक्ष्म जीवाणु वायु और आहार के द्वारा संक्रमण करते हैं ॥ इस रोग के रोगी मनुष्य और गवादि पशुओं के शरीर सम्बन्ध से अन्य मनुष्यों पर सूक्ष्म जीवाणु का आक्रमण होता है ॥

वायु द्वारा—यक्ष्मा रोगी को खाँसी हुआ करती है ॥ खाँसते समय उसके मुँह से कफ के जर्रे निकल कर वायु में मिल जाते हैं ॥ इन जर्रों में क्षय जीवाणु रहते हैं ॥ जो मनुष्य क्षय रोगी के पास रहते हैं उनके फुस्फुसों में ये जीवाणु प्रश्वास के द्वारा जा सकते हैं। क्षय रोगी का निःश्वास दूषित होता है ॥ रोगी जब इधर उधर कफ फेंक देता है तो वह शुष्क होने पर हवा में उड़ सकता है और ऐसा होने पर दूसरे मनुष्यों के फुस्फुसों पर इसका प्रभाव पड़ता है ॥

आहार द्वारा—यदि कोई भोजन की वस्तु (दूध आदि) यक्ष्मा रोगी के पास रक्खी हो, तो कफ के ज़र्रे उसमें मिल जायेंगे और जो मनुष्य उसका सेवन करेगा उसके शरीर (अन्त्र) में क्षय जीवाणु पहुंच सकते हैं। यक्ष्मा पीड़ित गाय और भैंस आदि का मांस और दूध दूषित होता है उसके खाने पीने से भी रोग होता है। मुख या नासिका से प्रवेश करते हुये जीवाणु कभी कभी उपजिह्वा (Tonsil) या गले में अँटक जाते हैं और वहांसे लसिका ग्रन्थियों में होकर रक्त से जा मिलते हैं। उपजिह्वा और गले की ग्रन्थियों का यह मार्ग बच्चों में बहुत साधारण होता है। फुस्फुसगतक्षय (Phthisis) का रोगी जब अपने कफ को मुंह से अन्दर निगल जाता है तब कफ स्थित जीवाणु उस रोगी के अन्त्र में पहुंच जाते हैं। दूषित अन्न जल और कच्चा दूध के सेवन से ऐसा होना प्रायः सम्भव है। इससे आन्त्रिक क्षय हो जाता है।

आन्त्रिकक्षय (Tuber culosis of intestine) के जखम—

१—लम्बे व्यास अन्त्रों के आड़ेपन में होते हैं।

२—किनारे मोटे सख्त होते हैं और गढ़े हुये नहीं होते।

३—अन्त्रों में बहुधा रुकाव होता है।

४—घाव कष्ट साध्य होता हैं।

५—उदर की कला (Peritoneum) का प्रदाह सर्वदा होता है।

६—घाव खुरदरा और गाँठदार होता हैं।

७—अन्त्रों में घाव का स्थान नियत नहीं होता है।

८—अन्त्रों में छेद बहुत कम होता है।

बाह्य त्वचा द्वारा—जो लोग क्षय रोगी के शव के साथ सम्पर्क रखते हैं। यथा—

शरीर विज्ञान के अध्यापक का सहायक* जो प्रत्यक्ष रूप में शरीरांशों का निर्देश करता है। कसाई और जो चमड़े के व्यापारी हैं, उनकी त्वचा के ऊपर गांठ बन जाती है, जिसे एनाटोमिकल वार्ट वा बटहर्स वार्ट (Anatomical wart or Butêheres wart) कहते हैं। एपिथिलिअम कला (Epitheliam mambran) के नष्ट होने पर बाहर से त्वचा होकर जीवाणु शरीर में रक्त के साथ मिलता है और रक्त स्रोतों में बहता हुआ फुस्फुस पहुंचकर सर्व प्रथम वहां ही विकार उत्पन्न करता है। इसके कारण निम्नलिखित हो सकते हैं।

[क] रस और रक्त के परिभ्रमण में फुस्फुस सबसे आगे रहता है अतः जीवाणुओं का सर्व प्रथम युद्ध उसी के साथ होता है।

[ख] अपनी पुष्टी के लिये फुस्फुसों को रक्त कम राशि में मिलता है।

[ग] फुस्फुसों में रसायनियां (Lymphatics) भी

* Anatomical demonstrator

कम होती हैं। जीवाणु फुस्फुसों में पहुंचकर विकार फुस्फुस चूड़ा में उत्पन्न करते हैं। यह फुस्फुस चूड़ा में आगे से १॥ इञ्च नीचे और पीछे की ओर दिखाई देता है। साधारणतः एक तरफ के फुस्फुस में सर्व प्रथम यक्ष्माग्रन्थि (Tubercle) की उत्पत्ति होती हैं और वहांही कठिनता या गहराई (Cavity) होते न होते उसके नीचे की जगह में अन्य यक्ष्माग्रन्थियां बनती और फैलती रहती हैं।

फुस्फुस चूड़ा में सर्व प्रथम विकार होने के कारण निम्न लिखितहैं —

[क] फुस्फुस चूड़ा में रक्त और लसिका [Lymph] का संवहन ठीक नहीं होना।

[ख] शुद्ध वायु का प्रवेश कम होना।

[ग] चिमचिमा स्राव।

[घ] सङ्कोच विस्फार कम होना।

क्षय ग्रन्थि (Tubercle)

प्रश्वास वायु के साथ जब जीवाणु प्रवेश करता है, तब विकार श्वास नलिकाओं में होता है। जब जीवाणु रक्त और लसिका द्वारा प्रवेश करता है तो वायु कोष (Aircells) के दीवालों तथा केशिकाओं (Capillaris) में विकार होता है। एक बार जब किसी स्थान पर जीवाणु स्थिर हो जाते हैं तो उनकी वृद्धि होने लगती है एवं उसीसे यक्ष्मा ग्रन्थि उत्पन्न होती है। जब ग्रन्थि पूर्ण हो जाती है तो इसकी रचना इस प्रकार की होती है। उक्त ग्रन्थि के मध्य में एक या अनेक बड़े सेल (Joint cell) तथा कुछ सड़ा गला अंश रहता है। इस प्रकार की सूक्ष्म ग्रन्थि को एनाटोमिकल ट्यूबर्कल (Anatomical tubercle) कहते है। यह आँखों से दिखाई नहीं देती है। जो ग्रन्थि आँखों से दिखाई देती है वह उपरोक्त तीन-चार ग्रन्थियों के मिलाप से बनती है। इस बड़ी ग्रन्थि को मिलिअरी ट्युयर्कल (Miliary tubercle) कहते हैं। जब इसमें गलने की क्रिया आरम्भ होती है तब यह कोमल और किञ्चित पीले रङ्ग की हो जाती हैं। उस अवस्था में इसको पीतक्षय ग्रन्थि (Yollow tubercle) कहते हैं।

क्षय ग्रन्थि में विनाशक क्रियायें

[क] किलाट भवन (Caseation)—क्षय ग्रन्थि में हमेशा रक्त की कमी रहती है क्योंकि जहां क्षय जीवाणु वृद्धि पाते हैं वहां नई कैशिकायें उत्पन्न नहीं होतीं और पुरानी केशिकायें जीवाणुओं के विषैले प्रभाव से बन्द हो जाती हैं तथा विष के कारण उक्त ग्रन्थि के बीचमें घनी भवन (Cogulation), निर्जीवता (Necrosis) और वसाजन्य विकृति (Fatty degeneration) आरम्भ होती है निर्जीवता और वसाजन्य विकृति को ही किलाट (पनीर = छेना) भवन कहते हैं। इसी उपरोक्त क्रिया के कारण क्षय ग्रन्थि के बीच में पनीर (Cheese) के समान पदार्थ बन जाता है।

[ख] मृदु भवन (Softning)—आगे चलकर उसी पनीर सदृश पदार्थ में गलने की क्रिया होती है जिससे क्षय ग्रन्थि कोमल हो जाती है और उसके बीच में रोग-जन्य पूय बन जाता है। इस पूयमें स्थानिक टूटे-फूटे और गले हुये सेल (Cell) एवं मेद के कण भाग रहते हैं।

[ग] विवरी भवन (Cavitation)—क्षय ग्रन्थि के बीच में जो पूय उत्पन्न होता है, श्वास नलिका

द्वारा उसे बाहर निकलनेपर एक छोटासा विवर बन जाता है और उसका सम्बन्ध श्वास नलिका से रहता है। आ-रम्भ में विवर छोटे-छोटे रहते हैं किन्तु धीरे धीरे अनेक विवर एकमें मिलकर बड़े हो जाते हैं।

[घ] पूय भवन—जब उक्त विवर का सम्बन्ध श्वास नलिका होकर वाह्य वायु के साथ होता है तब सामान्य पूयजनक जीवाणु† विकृत स्थान पर जाकर पीव बनाते हैं।

[ङ] रक्तस्राव—फुस्फुस के नाश होने से रक्त-स्राव न्यूनाधिक राशि में हुआ करता है। प्रारम्भिक काल में रक्ताधिक्य के कारण स्राव होता है तथा बाद में रक्तवाहिनियों के दीवाल में घाव होने से और जब फुस्फुस में विवर हो जाता है तो फूली धमनी के फटने (Aneurism) के कारण अधिक राशि में रक्तस्राव होता है।

[च] यक्ष्मा ग्रन्थि में रोपण क्रिया—क्षय ग्रन्थि के मध्य में रक्तवाहिनियां नहीं होने से वास्तविक रोपण क्रिया होनी असम्भव है किन्तु उसके चारो तरफ तान्तव धातु का आवरण‡ बन जाता है। आगे चलकर

† Strepto coccus, Staphylo coccus.

‡ Fibrosis

इसमें सिकुड़न पैदा होती है जिससे क्षय ग्रन्थि के चारो ओर एक कठिन कोष बनकर वह कठोर ग्रन्थि सी बन जाती हैं। ऐसा होना रोग निवारक शक्ति पर निर्भर है।

विकृति विज्ञान (Pathology)

शरीर के जिस भाग में यह रोग होता है वहां चावल के कण के समान छोटे-छोटे कण समूह उभर आते हैं एवं आक्रान्त स्थान श्वेत विन्दुके समान दिखाई पड़ता है तथा बाद में पीला पड़ जाता है एक्स-रे (X-rays) यन्त्र से देखने पर ऐसा मालूम पड़ता है: कि क्षय जीवाणु शरीर में प्रवेश करने के बाद लसिका वाहिनियों में स्थित होकर वहां अपनी संख्या बढ़ाने लगते हैं। काफी संख्या होने पर लसिका वाहिनियों का प्रवाह बन्द हो जाता हैं और कुछ समय के बाद जीवाणु मर जाते हैं एवं उनके शरीर से जो विष (Toxin) निकलता है वह आस पास के सेलों में प्रकोप पैदा करता है, जिसके फल स्वरूप शेष जीवित जीवाणुओं के चारो तरफ इनडोथिलिअल (Indo-thelial) सेलों का एक घेरा सा बन जाता है एवं इसी प्रकोप

के कारण उस स्थान में चारों ओर लसिकाणु (Lympho-cyte) भी इकट्ठे होते हैं और उनका भी एक घेरा इनडोथि-लिअल सेलों के बाहर बन जाता है। धीरे धीरे भीतर की रक्त वाहिनियां बन्द हो जाती हैं और मध्य के इनडोथिलिअल सेलों में अपक्रान्ति उत्पन्न होकर इन सेलों के मिलाप से युग्म सेल (Joint cells) बनते हैं। अन्त में मध्य का भाग बिल्कुल अपक्रान्त हो जाता है और उस स्थान में किसी प्रकार के भी सेल दिखाई नहीं देते हैं।

इस क्षय ग्रन्थि की रचना में निम्नलिखित चार घेरे होते हैं।

[क] सबसे बीच में सड़े गले सेल होते हैं जो रञ्जित करने पर भी ठीक रङ्ग का ग्रहण नहीं करते हैं। इसके आस पास युग्म सेल होते हैं।

[ख] इसके बाद इनडोथिलिअल सेलों का घेरा होता है, जिनकी कई पंक्तियां होती हैं। इसके सेल आकार में दीर्घवृत्त श्वेत कणों (Lenko cytes) से कुछ बड़े होते हैं।

[ग] इसके बाहर लसिका जन्य सेल (Lymphoid-cell) का घेरा होता है।

[घ] सबसे पहले सौत्रिक तन्तु (Fibroustissue) का आवरण सा होता है। कभी कभी युग्म सेल नहीं

मिलते; कभी कभी, विशेषतः पुरानी अवस्था में अनेक सेल मिलते हैं। इस तरह क्षय ग्रन्थि में चार वलय होते हैं। इस ग्रन्थि के बीच में रक्त वाहिनियां नही होती हैं।

क्षय ग्रन्थि की स्थिति

क्षय ग्रन्थि केवल रसायनियों१ की दीवाल में बन सकती है। रक्तवाहिनियों की दीवाल में जितनी शान्ति मिलनी चाहिये उतनी नहीं मिलती है अतः वहां इसका निर्माण नहीं होता हैं। इसका विशेष स्थान लसिका ग्रन्थियां२ उपजिह्वा३, फुस्फुस४, फुस्फुसावरण५, मस्तिष्कावरण६, सन्धियों की श्लैष्मिककला७, हड्डियां और उनका आवरण, अन्त्र, स्वरयन्त्र, मेदा, यकृत्, प्लीह, वृक्क आदि हैं। शरीर के सौत्रिकतन्तु और मांसतन्तु८ में क्षय ग्रन्थि नहीं होती है। बाल्यावस्था में लसिका

१ Symphatic Vessels or Lymphatics.
२ Lymph glands. ३ Tonsils. ४ Lungs. ५ Pleura
६ Duramàter. ७ Mucous membrane of joint,
८ Muscular tissue.

ग्रन्थियों, सन्धियों, हड्डियों और अन्त्र६ में यक्ष्मा ग्रन्थि अधिक होती है। युवावस्था में यक्ष्मा ग्रन्थि फुस्फुस में होती है। इन बातों को निम्नलिखित वैदिक मन्त्र में सूत्र रूप से देखें—

यः कीककसाः प्रश्रृणाति तलीद्य मव तिष्ठति।

(अथर्व० का० ६ अ० ७ सू० ८१)

अर्थात्—जो राजयक्ष्ममा रोग हड्डियों तक प्रसरण कर जाता है और हड्डियों के ऊपर जो मांसपेशियां हैं उन्हें सुखा डालता है। यानी क्षय रोग का विषाक्त प्रभाव क्रमशः रस, रक्त एवं मांसादिकों पर विनाशक क्रिया करता हुआ हड्डियों तक पहुंच जाता है।

पूर्णता प्राप्त क्षय ग्रन्थि में निम्नलिखित चार परिवर्तन होते हैं।

[क] किलाट भवन (Caseation)—जब क्षय जीवाणु प्रवल होते हैं और रोग निवारक शक्ति निर्वल होती है, तब यह स्थिति पैदा होती है। क्षय ग्रन्थि के बीच में रक्त की कमी रहने के कारण तथा जीवाणुओं के विष से अपक्रान्ति और कोथ आरम्भ होता है, जिससे वे सेल फटे हुए दूध के समान हो जाते हैं। इन सेलों में जीवाणु (T. B.) दिखाई नहीं देते किन्तु सेलों को अन्य प्राणी में प्रवेश करने से रोग उत्पन्न हो सकता है।

---

६ Intestine.

कम होती हैं। जीवाणु फुस्फुसों में पहुंचकर विकार फुस्फुस चूड़ा में उत्पन्न करते हैं। यह फुस्फुस चूड़ा में आगे से १॥ इञ्च नीचे और पीछे की ओर दिखाई देता है। साधारणतः एक तरफ के फुस्फुस में सर्व प्रथम यक्ष्माग्रन्थि (Tubercle) की उत्पत्ति होती हैं और वहांही कठिनता या गहराई (Cavity) होते न होते उसके नीचे की जगह में अन्य यक्ष्माग्रन्थियां बनती और फैलती रहती हैं।

फुस्फुस चूड़ा में सर्व प्रथम विकार होने के कारण निम्न लिखितहैं —

[क] फुस्फुस चूड़ा में रक्त और लसिका [Lymph] का संवहन ठीक नहीं होना।

[ख] शुद्ध वायु का प्रवेश कम होना।

[ग] चिमचिमा स्राव।

[घ] सङ्कोच विस्फार कम होना।

क्षय ग्रन्थि (Tubercle)

प्रश्वास वायु के साथ जब जीवाणु प्रवेश करता है, तब विकार श्वास नलिकाओं में होता है। जब जीवाणु रक्त और लसिका द्वारा प्रवेश करता है तो वायु कोष (Aircells) के दीवालों तथा केशिकाओं (Capillaris) में विकार होता है। एक बार जब किसी स्थान पर जीवाणु स्थिर हो जाते हैं तो उनकी वृद्धि होने लगती है एवं उसीसे यक्ष्मा ग्रन्थि उत्पन्न होती है। जब ग्रन्थि पूर्ण हो जाती है तो इसकी रचना इस प्रकार की होती है। उक्त ग्रन्थि के मध्य में एक या अनेक बड़े सेल (Joint cell) तथा कुछ सड़ा गला अंश रहता है। इस प्रकार की सूक्ष्म ग्रन्थि को एनाटोमिकल ट्युबर्कल (Anatomical tubercle) कहते है। यह आँखों से दिखाई नहीं देती है। जो ग्रन्थि आँखों से दिखाई देती है वब उपरोक्त तीन-चार ग्रन्थियों के मिलाप से बनती है। इस बड़ी ग्रन्थि को मिलिअरी ट्युबर्कल (Miliary tubercle) कहते हैं। जब इसमें गलने की क्रिया आरम्भ होती है तब यह कोमल और किञ्चित पीले रङ्ग की हो जाती हैं। उस अवस्था में इसको पीतक्षय ग्रन्थि (Yollow tubercle) कहते हैं।

क्षय ग्रन्थि में विनाशक क्रियायें

[क] किलाट भवन (Caseation)—क्षय ग्रन्थि में हमेशा रक्त की कमी रहती है क्योंकि जहां क्षय जीवाणु वृद्धि पाते हैं वहां नई केशिकायें उत्पन्न नहीं होतीं और पुरानी केशिकायें जीवाणुओं के विषैले प्रभाव से बन्द हो जाती हैं तथा विष के कारण उक्त ग्रन्थि के वीचमें घनी भवन (Cogulation), निर्जीवता (Necrosis) और वसाजन्य विकृति (Fatty degeneration) आरम्भ होती है निर्जीवता और वसाजन्य विकृति को ही किलाट (पनीर=छेना) भवन कहते हैं। इसी उपरोक्त क्रिया के कारण क्षय ग्रन्थि के बीच में पनीर (Cheese) के समान पदार्थ बन जाता है।

[ख] मृदु भवन (Softning)—आगे चलकर उसी पनीर सदृश पदार्थ में गलने की क्रिया होती है जिससे क्षय ग्रन्थि कोमल हो जाती है और उसके बीच में रोग-जन्य पूय बन जाता है। इस पूयमें स्थानिक टूटे-फूटे और गले हुये सेल (Cell) एवं मेद के कण भाग रहते हैं।

[ग] विवरी भवन (Cavitation)— क्षय ग्रन्थि के बीच में जो पूय उत्पन्न होता है, श्वास नलिका

द्वारा उसे बाहर निकलनेपर एक छोटासा बिवर बन जाता है और उसका सम्बन्ध श्वास नलिका से रहता है। आ-रम्भ में बिवर छोटे-छोटे रहते हैं किन्तु धीरे धीरे अनेक बिवर एकमें मिलकर बड़े हो जाते हैं।

[घ] पूय भवन—जब उक्त विवर का सम्बन्ध श्वास नलिका होकर वाह्य वायु के साथ होता है तब सामान्य पूयजनक जीवाणु† विकृत स्थान पर जाकर पीव बनाते हैं।

[ङ] रक्तस्राव—फुस्फुस के नाश होने से रक्त-स्राव न्यूनाधिक राशि में हुआ करता है। प्रारम्भिक काल में रक्ताधिक्य के कारण स्राव होता है तथा बाद में रक्तवाहिनियों के दीवाल में घाव होने से और जब फुस्फुस में विवर हो जाता है तो फूली धमनी के फटने (Aneurism) के कारण अधिक राशि में रक्तस्राव होता है।

[च] यक्ष्मा ग्रन्थि में रोपण क्रिया—क्षय ग्रन्थि के मध्य में रक्तवाहिनियां नहीं होने से वास्तविक रोपण क्रिया होनी असम्भव है किन्तु उसके चारो तरफ तान्तव धातु का आवरण‡ बन जाता है। आगे चलकर

---

† Strepto coccus, Staphylo coccus.

‡ Fibrosis

इसमें सिकुड़न पैदा होती है जिससे क्षय ग्रन्थि के चारो ओर एक कठिन कोष बनकर वह कठोर ग्रन्थि सी बन जाती हैं। ऐसा होना रोग निवारक शक्ति पर निर्भर है।

विकृति विज्ञान (Pathology)

शरीर के जिस भाग में यह रोग होता है वहां चावल के कण के समान छोटे-छोटे कण समूह उभर आते हैं एवं आक्रान्त स्थान श्वेत विन्दुके समान दिखाई पड़ता है तथा बाद में पीला पड़ जाता है एक्स-रे (X-rays) यन्त्र से देखने पर ऐसा मालूम पड़ता हैं: कि क्षय जीवाणु शरीर में प्रवेश करने के बाद लसिका वाहिनियों में स्थित होकर वहां अपनी संख्या बढ़ाने लगते हैं। काफी संख्या होने पर लसिका वाहिनियों का प्रवाह बन्द हो जाता हैं और कुछ समय के बाद जीवाणु मर जाते हैं एवं उनके शरीर से जो विष (Toxin) निकलता है वह आस पास के सेलों में प्रकोप पैदा करता है, जिसके फल स्वरूप शेष जीवित जीवाणुओं के चारो तरफ इनडोथिलिअल (Indo-thelial) सेलों का एक घेरा सा बन जाता है एवं इसी प्रकोप

के कारण उस स्थान में चारों ओर लसिकाणु (Lympho-cyte) भी इकट्ठे होते हैं और उनका भी एक घेरा इनडोथिलिअल सेलों के बाहर बन जाता है। धीरे धीरे भीतर की रक्त वाहिनियां बन्द हो जाती हैं और मध्य के इनडोथिलिअल सेलों में अपक्रान्ति उत्पन्न होकर इन सेलों के मिलाप से युग्म सेल (Joint cells) बनते हैं। अन्त में मध्य का भाग बिल्कुल अपक्रान्त हो जाता है और उस स्थान में किसी प्रकार के भी सेल दिखाई नहीं देते हैं।

इस क्षय ग्रन्थि की रचना में निम्नलिखित चार घेरे होते हैं।

[क] सबसे बीच में सड़े गले सेल होते हैं जो रञ्जित करने पर भी ठीक रङ्ग का ग्रहण नहीं करते हैं। इसके आस पास युग्म सेल होते हैं।

[ख] इसके बाद इनडोथिलिअल सेलों का घेरा होता है, जिनकी कई पंक्तियां होती हैं। इसके सेल आकार में दीर्घवृत्त श्वेत कणों (Lenko cytes) से कुछ बड़े होते हैं।

[ग] इसके बाहर लसिका जन्य सेल (Lymphoid-cell) का घेरा होता है।

[घ] सबसे पहले सौत्रिक तन्तु (Fibroustissue) का आवरण सा होता है। कभी कभी युग्म सेल नहीं

मिलते; कभी कभी, विशेषतः पुरानी अवस्था में अनेक सेल मिलते हैं। इस तरह क्षय ग्रन्थि में चार वलय होते हैं। इस ग्रन्थि के बीच में रक्त वाहिनियां नही होती हैं।

क्षय ग्रन्थि की स्थिति

क्षय ग्रन्थि केवल रसायनियों१ की दीवाल में बन सकती है। रक्तवाहिनियों की दीवाल में जितनी शान्ति मिलनी चाहिये उतनी नहीं मिलती है अतः वहां इसका निर्माण नहीं होता हैं। इसका विशेष स्थान लसिका ग्रन्थियां२ उपजिह्वा३, फुस्फुस४, फुस्फुसावरण५, मस्तिष्कावरण६, सन्धियों की श्लैष्मिककला७, हड्डियां और उनका आवरण, अन्त्र, स्वरयन्त्र, मेदा, यकृत्, प्लीह, वृक्क आदि हैं। शरीर के सौत्रिकतन्तु और मांसतन्तु८ में क्षय ग्रन्थि नहीं होती है। बाल्यावस्था में लसिका

१ Symphatic Vessels or Lymphatics.
२ Lymph glands. ३ Tonsils. ४ Lungs. ५ Pleura
६ Duramàter. ७ Mucous membrane of joint,
८ Muscular tissue.

ग्रन्थियों, सन्धियों, हड्डियों और अन्त्र६ में यक्ष्मा ग्रन्थि अधिक होती है। युवावस्था में यक्ष्मा ग्रन्थि फुस्फुस में होती है। इन बातों को निम्नलिखित वैदिक मन्त्र में सूत्र रूप से देखें—

य: कीककसाः प्रश्टृणाति तलीद्य मव तिष्ठति।

(अथर्व० का० ९ अ० ७ सू० ८१)

अर्थात्—जो राजयक्ष्ममा रोग हड्डियों तक प्रसरण कर जाता है और हड्डियों के ऊपर जो मांसपेशियां हैं उन्हें सुखा डालता है। यानी क्षय रोग का विषाक्त प्रभाव क्रमशः रस, रक्त एवं मांसादिकों पर विनाशक क्रिया करता हुआ हड्डियों तक पहुंच जाता है।

पूर्णता प्राप्त क्षय ग्रन्थि में निम्नलिखित चार परिवर्तन होते हैं।

[क] किलाट भवन (Caseation)—जब क्षय जीवाणु प्रबल होते हैं और रोग निवारक शक्ति निर्बल होती है, तब यह स्थिति पैदा होती है। क्षय ग्रन्थि के बीच में रक्त की कमी रहने के कारण तथा जीवाणुओं के विष से अपक्रान्ति और कोथ आरम्भ होता है, जिससे वे सेल फटे हुए दूध के समान हो जाते हैं। इन सेलों में जीवाणु (T. B.) दिखाई नहीं देते किन्तु सेलों को अन्य प्राणी में प्रवेश करने से रोग उत्पन्न हो सकता है।

---

६ Intestine.

[ख] सौत्रिक तन्तु निर्माण (Fibrosis)— जब जीवाणु निर्बल और रोग निवारक शक्ति सबल होती है तब यह अवस्था उत्पन्न होती है। (The development of fibrous tissue in an organ)

[ग] खटिका वरण क्रिया (Calcification)— सौत्रिकतन्तु बनने के बाद उसके मध्य में खटिक तत्व (:Calcium) के कण सञ्चित होते हैं और क्षय ग्रन्थि सिमेण्ट या कंक्रोट के समान (Tubercle cement or Concrete) हो जाती है। इस प्राकृतिक खटिकावरण क्रिया के घेरे में क्षय जीवाणु न्यासभूत (Deposit) हो कुछ दिनों के बाद मर जाते हैं क्योंकि इस अवस्था में खाद्य का अभाव हो जाता है। इस क्रिया के बाद रोग का विशेष संक्रमण नहीं होता अन्यथा रोग निवारक शक्ति के क्षीण रहने पर खटिका वरण में भो क्षय जीवाणु जीवित रहकर उक्त आवरण की कमजोरी से लाभ उठाते हुए अपना कार्य आरम्भ कर देते हैं।

[घ] व्रणी भवन (Abscessformetion)— जब क्षय ग्रन्थि के भीतर पीव बनाने वाले जीवाणुओं का प्रवेश होता है तो आस पास के स्थान से तरल पदार्थ इकट्ठा होकर एक विद्रधि बन जाती है।
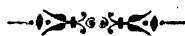
यक्ष्मा के लक्षण

—(:*:)—

[क] स्थानिक विकृति के कारण होने वाले लक्षण—यथा—खांसी, कफ, रक्तष्ठीवन, फुस्फुसावरण शोथ, वक्षःस्थल में वेदना, और श्वासकृच्छ्रता।

[ख] स्थानिक वात नाड़ियों (Vagus Nerves) के अग्रभाग की उत्तेजनाजन्य लक्षण— यथा— स्वरभङ्ग गल बिल की गुदगुदी, खांसी, अग्निमान्द्यादि पचन संस्थान के विकार, हृत्स्पन्दन आदि रक्त वहन संस्थान के विकार, छाती और कन्धों की पीड़ा।

[ग] विशेष कारण जन्य लक्षण—बेचैनी, असहिष्णुता, दौर्बल्य, पचन संस्थान के विकार, वजन का घटना, रात्रिस्वेद, ज्वर, नाड़ी (Puls) की शीघ्रगति और रक्त गत परिवर्तन।

मुख्य लक्षण—

कास, यक्ष्मारोग का एक प्रधान लक्षण है जो अधिकांश रोगियों में रोगारम्भ काल से अन्त तक दिखाई देता है। जब फुस्फुस में विवर बनते हैं तब खांसी का दौरा होता है और विशेषकर सबेरे एवं निद्रा के पश्चात् हुआ करता है। सबेरे

और निद्रा के बाद खांसी आने का यह कारण है कि निद्रावस्था में श्वास नलिका की शाखा, प्रशाखा, अनुशाखाओं और वायुकोषों[१] में काफी कफ इकट्ठा हो जाता है। नींद खुलने पर इस कफ से क्षोभ होने के कारण इसको बाहर निकालने के लिये खांसी का वेग आया करता हैं। कभी कभी खांसी इतनी तीव्र होती है कि उससे वमन हो जाता है और आमाशय में अन्न नहीं ठहरने के कारण रोगी दिनानुदिन दुर्बल होता जाता है। जब स्वर यन्त्र में कुछ खराबी होती है तब आवाज़ बदल जाती है और गले में कुछ पीड़ा भी होने लगती है। कहीं कहीं इस रोग में खांसी का अभाव भी रहता हैं।

कफ—आरम्भिक अवस्था में कफ की राशि बिल्कुल नहीं होती या अत्यल्प होती है और उसका स्वरूप उबाले हुए साबूदाने की भाँति या कास रोग के बलगम की तरह होता है। जब फुस्फुस में सड़ने और विवर बनने की क्रिया आरम्भ होती है तब कफ काफी निकलता हैं एवं उसका रङ्ग कुछ हरापन लिये पीला तथा पीव के समान होता है। उसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध भी होती है। पानी में छोड़ने पर डूब जाता है। थूक में जीवाणु बहुत कम होते हैं। कईबार सूक्ष्मदर्शक यन्त्र (Microscope) द्वारा परीक्षा करने पर भी नहीं देखे गये हैं। बलगम की गांठ में जीवाणु अधिक राशि में

---

१ Aircells.

मिलते हैं। थुक या कफ में ओजोधातु (Albùmine) का मिलना यक्ष्मा रोग का निश्चिति दर्शक है।

रक्तष्ठीवन—यह लक्षण प्रतिशत ६० से ८० रोगियों में दिखाई देता है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक पाया जाता है। दिन की अपेक्षा रात्रि में अधिक होता है एवं जब रोगी आराम करता है या बिस्तरे पर लेटा रहता है उस अवस्था में अधिक हुआ करता है मुंह या नाक से अथवा दोनों ही से। यद्यपि रक्तष्ठीवन यक्ष्मा रोग का एक मुख्य लक्षण है तथापि चिकित्सक का केवल रक्तष्ठीवन मात्र से ही रोग निर्णय नहीं करना चाहिये क्योंकि यह अनेक कारणों से होता है

१—**फुस्फुसगत यक्ष्मा** (Phthisis)—यह सबसे प्रधान और साधरण होता है। इसमें फुस्फुसगत गढ़े के भीतर धमनी ग्रन्थि१ टूटने से या धमनी की दिवार में व्रण होने से या रोग की प्रारम्भिक अवस्था में रक्ताधिक्य होने से खून निकलता है।

२—**हृदय रोग**—विशेषकर द्वियन्त्रक कपाट के अवरोध

---

१ फूली धमनी को धमनी ग्रन्थि कहते हैं (Adilatation of an artery)। इसे रक्तवाहिन्यर्बुद भी कह सकते हैं यह धमनी की दीवार के भीतरी स्तर में छिद्र होकर वा बिना छिद्र के धमनी के स्तर फैलने से बनता है।

(Mitrol Stenosis) से तथा फुस्फुस में अशुद्ध रक्त के आधिक्य से खून आता है।

३—फुस्फुस विकार और फुस्फुसावरण शोथ तथा अन्य विकार— यथा—

तीव्र श्वासनलिकाशोथ, फुस्फुस विद्रधि, कोथ, श्वास नलिकाविस्तृति (Bronchotrust) श्वसनकज्वर (Pneumonia), लघु श्वास नाड़ी प्रदाह (Broncho Pneumonia) संक्रामक श्लेष्मक ज्वर (Inflnenza) प्रभृति के कारण रक्तस्राव सम्भव है।

४—श्वासनलिका, फुस्फुस और वक्षःस्थ ग्रन्थियों के अर्बुद से रक्तस्राव होता है।

५ फुस्फुसगत धमनी का अवरोध (Inforction of the Lungs) होने से रक्तस्राव होता है।

६—फूली धमनी (Anêurism) इसके टूटने से कभी कभी अधिक मात्रा में रक्तस्राव होकर अल्पकाल में ही रोगी की मृत्यु हो जाती है।

७—रक्त के विकार—श्वेतकणिका वृद्धि (Leükaomia) फुस्फुस रक्तस्राव (Haemoptysis), कुपित रक्त पित्त (Purpura Scurvy) जिसमें टिशुओं की शक्ति नष्ट रहने के कारण साधारण आघात से ही त्वचा के भीतर ही भीतर रक्तस्राव होने लगता है। रक्तपित्त में आमाशयिक रक्तस्राव (Haematamasis) होता है, जो मुंह

नाक या दोनों ही से आता है और कालिमा लिये अम्ल-प्रतिक्रियायुक्त रहता है। अधोगत रक्त पित्त में खून पैखाना और पेशावके साथ आता है जिस मूत्रगत रक्त का "चरक" ने बड़ाही सुन्दर संकेत किया है। यथा—

हारिद्र वर्णं रुधिरं समूत्रं विना प्रमेहस्यहि पूर्व रूपैः।
योमूत्रयेत्तन्न वदेत् प्रमेहं रक्तस्य पित्तस्यहिस प्रकोपः॥
(चरक चि॰ अ॰ ६ श्लो॰ ५४)

८—तीव्र स्वरूप का विस्फोटक ज्वर, यथा - रोमान्तिका, वृहन्मसूरिका और आन्त्रिक ज्वर इनके कारण भी रक्त आता है।

९—कृमि, यथा - फुस्फुसगत ट्रिमेटोड जातीय क्रिमि (Distomapul monal) से भी खून आता है।

१०—स्त्रियों को कभी कभी ऋतु धर्म के समय उसके बदले में फुस्फुस से रक्तस्राव होता है जिसे भिकेरिअस (Vicarious) कहते हैं।

११—छाती पर आघात होने से भी रक्तस्राव होता हैं।

१२—मिथ्या रक्तष्ठीन, इस प्रकार का रक्तष्ठीवन नाक, गला और मसूड़ों के विकार तथा योषापस्मार (Histeria) तथा पाण्डु रोग में होता है। यह प्रायः प्रातःकाल दिखाई देता है।

१३—यकृत की किया के बिगड़ने पर भी रक्तस्राव होता है।

इस प्रकार खून निकलने का पूर्ण विवेचन कर रोग का निदान करना चाहिये।

श्वासकष्ट– यह लक्षण रोगारम्भ से ही कुछ कुछ देखा जाता है लेकिन क्रमशः रोग वृद्धि के साथ बहुत कष्टकारक हो जाता है। प्रारम्भिक अवस्था में श्वासकष्ट महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) की गति कम होने से होता है। बाद में फुस्फुस के अधिकांश भाग के नाश होने से होता है। इसके अलावे फुस्फुसावरण शोथ और हृदय दौर्बल्य आदि भी इसके कारण हैं।

वेदना– यक्ष्मा के प्रत्येक रोगी में यह लक्षण नहीं होता है। यह बहुधा छाती में शुष्क शोथ होने से होता है। वेदना अधिकतर छाती की दीवार में रहती हैं। जब महा प्रचीरापेशी के साथ सम्बन्ध रखने वाले आवरण का स्तर शोथयुक्त होता है तो पीड़ा आमाशय के ऊपरी भाग में या उसी तरफ के कन्धेमें मालूम होती हैं। क्षय रोग की उत्तरस्थिति में छाती की दीवार में साधारणतया स्पर्शासहिष्णुता उत्पन्न हो जाती है।

ज्वर—यह रोगाम्भ काल से ही रहता है और पूर्ण विसर्गी स्वरूप का होता हैं। प्रातः प्रायः नहीं रहता और दोपहर से बढ़ता है। कभी कभी ज्वर सन्तत या अर्द्ध विसर्गी स्वरूप का होता हैं। ज्वर की ठीक कल्पना करने के लिये दो-दो घंटे पर तापमान देखना चाहिये।

दिन और रात में निम्नाङ्कित समय गात्रताप देखना आवश्यक है।

[क] सबेरे सोकर उठने के पूर्व और भोजन के पूर्व।

[ख] भोजन कर कुछ देर आराम करने पर।

[ग] साँझ को ६ बजे।

[घ] रात में ६ बजे।

सबसे अधिक गात्रताप दिन के २ से ६ बजे तक या कहीं कहीं ८-६ बजे रात तक रहता है और सबसे कम रात के २ बजे से ६ बजे सबेरे तक।

सन्ताप के कारण—क्षय विकृति के स्थान से जो पदार्थ विशेष शोषित होते हैं उनका मस्तिष्कगत उष्णता-केन्द्र पर प्रभाव पड़ता है, जिससे वह केन्द्र उष्णता के नियन्त्रण में असमर्थ हो जाता है। जब फुस्फुस में विवरी भवन तथा पूय-भवन के कार्य जारी होते हैं तो ज्वर प्रलेपकरूप१ (Heetic-type) का होता है। पाठक! देखें तन्त्रान्तरों में इसकी कैसी सुन्दर विवेचना है—

प्रलिम्पन्निवगात्राणि घर्मेण गौरवेण च।

१ तथा प्रलेपकोज्ञेयः शोषिणां प्राणनाशनः।
दुश्चिकित्स्य तमो मन्दः सुकष्टो धातुशोषकृत्॥
(सुश्रुत उ० त० अ० ३९ श्लो० ५१)

मन्द ज्वर विलेपिच स शीतः स्यात्प्रलेपकः ॥

(वृ० वा० अ० ३)

प्रलेपकाख्यो विषमः प्रायशः क्लेश शोषिणाम् ।

ज्वराश्चविषमाः सर्वे प्रायः क्लेशाय शोषिणाम् ॥

(भाव प्रकाश)

अर्थात् जो ज्वर हमेशा मन्द-मन्द रहनेवाला हो, जिसमें पसीने से शरीर लेपित किया सा मालूम हो तथा भारीपन और शीतयुक्त हो उसको प्रलेपक ज्वर कहते हैं ।

यद्यपि सम्पूर्ण विषम ज्वर (Malarial fivers) विशेष कर शोषयुक्त मनुष्य को अत्यन्त दुःख देनेवाले हैं; तथापि उनमें प्रलेपक नाम का ज्वर तो क्षय रोगियों के प्राणो के लिये भयावह है ।

अग्निवेश ने भी इसका सुन्दर संकेत किया है । यथा --

मन्दोति गौरव स्वेदो ज्वरो नित्यं२ प्रलेपकः ।

(अञ्जन निदान--श्लो० २८)

हिन्दी--मन्दाग्नि, शरीर में भारीपन, पसीने का आना और ज्वर का हर समय वर्तमान रहना यह प्रलेपक ज्वर का लक्षण है ।

शरीर शीर्णता (Consumption)--यह यक्ष्मा का प्रधान लक्षण है इसीलिये इसे "शोष" कहते हैं । पहिले वक्षः-

२ नित्यं = स्थितिशीलः

स्थल की पेशियां सूखने लगतीं हैं और पार्श्व की पेशियां विकृत हो जातीं हैं। धीरे धीरे रसादिकों का क्षय होने से शरीर का भार भी घट जाता हैं। अङ्गुलियों के अग्रभाग फूल जाते और नाखून धनुष की तरह टेढ़े हो जाते हैं। हथेली कोमल शोथ-युक्त रहती है। देह रक्तहीन हो जाती है। नाड़ी की गति (Pulse Beating) द्रुत तथा क्षीण रहती है।

स्वेद—यक्ष्मा में पसीना बहुधा सबेरे समय हुआ करता है। दिन में सोने के पश्चात् भी देखा जाता है। रात को स्वप्नावस्था में शुक्र पात होता हैं। किसी-किसी रोगी की देह हमेशा पसीने से तर रहती है और गात्रताप २४ घण्टे में दो-तीन बार बढ़ता हैं।

अब आप इन बातों को प्राचीन श्लोकों में पढ़ें। यथा—

शिरोरुहाणां पतनं निशास्वेदश्च[१] जायते।
रक्त निष्ठीवन श्वासौ बल मांस क्षयादयः॥
यक्ष्मामये त्रिदोषोत्थे त्वचिरात् क्षयकारिणि।
भवेद् द्वैकालिकोवापि ज्वरस्त्रैकालिकोऽपिवा॥
अनिशं जायते स्वेदो[२] दुभुक्षा न प्रवर्त्तते।
करणानि[३] विषीदेयुः शय्याचाश्रीयतेतराम्॥

(भैषज्य० यक्ष्माधिकारे)

---

१ स्वप्न में वीर्यपात होना। २ सदा पसीना देना।
३ इन्द्रियों की शक्ति का नष्ट होना।

पचन संस्थान के लक्षण—जिह्वा बहुत स्वच्छ रहती है। भूख खूब मालूम होती है। "लैसगू (Lasague)" शास्त्रज्ञ का मत है कि जो लोग खूब खाते हैं और आहार को हज़म भी करते हैं तो भी ज्वर पीड़ित रहते हैं, वे प्रायः यक्ष्मी होते हैं। महर्षि चरक ने भी कहा है—"महाशनं क्षीयमाणमित्यादि।" कभी-कभी अग्निमान्ध, हल्लास, आध्मान आदि उपद्रव भी उपस्थित हो जाते हैं।

रक्त सम्वहन संस्थान—ज्वर नहीं रहने पर भी स्वभाविकता से अधिक तेज नाड़ी की गति रहती है। रक्तचाप[१] (Blood pressure) स्वभाविक रूप से कम हो जाता है। रक्तष्ठीवन और रक्तचाप की कमी यक्ष्मारोग की अन्त अवस्था में होती है। रक्तकण (Red blood corpuseles) तथा कण रहित रक्त की देह में कमी रहती है।

---

१ स्वस्थ मनुष्य में हृदय सङ्कोच के समय रक्तचाप १२० और फैलने के समय ८०–८५ रहता है। १००+ ½ उम्र से पूरी उम्र तक इसकी आरोग्य स्थिति मानी जाती है।

फुस्फुसगत क्षय के खास लक्षण
(Special Symptoms of Phthisis)

१ फुस्फुस से रक्तस्राव होना – यह चमकीला लाल और फेन युक्त होता है। इसकी प्रतिक्रिया क्षारीय होती है और प्रायः खांसने के बाद होता है। कभी कभी अधिक मात्रा में निकलता है।

२—खांसी होना—इसका विशेष लक्षण है, पहले खांसी थोड़ी रहती हैं, फिर बढ़ती है। यह खांसी रात को तथा भोर में अधिक बढ़ती है।

३—पहले जो कफ आता हैं वह कुछ गाढ़ा आता है उसके बाद कुछ ढीला और मात्रा में अधिक। आरम्भ में हो सकता हैं कि कफ के साथ क्षय जीवाणु नहीं निकलें किन्तु क्रमशः रोग बढ़ने पर फुस्फुस के टिशुओं का क्षय होने लगता है और उस समय कफ के साथ जीवाणु निकलते हैं एवं इनके साथ-साथ दूसरे जीवाणु स्टेप्टो-कौकस आदि भी पाये जाते हैं।

४—पहले ज्वर केवल सन्ध्या समय में क्रमशः १००° F से १०४ तक बढ़ सकता है एवं जीवाणु जन्य विष (T. B.

Toxin) के बढ़ने पर गात्र ताप भी अधिक बढ़ जाता है। ज्वर के साथ-साथ रात में पसीना भी आता है।

५—रोगी का वज़न धीरे घटने लगता है और वह दुर्बल एवं कृश हो जाता है। यह लक्षण जैसे-जैसे ज्वर बढ़ता है उसी क्रम से बढ़ता है।

६ रक्ताल्पता रोग होने के साथ-साथ होती है और क्रमशः वृद्धि पाती है।

७- वक्षःस्थल कुछ चिपटा हो जाता है, जो उरःफलक के पुरोभाग से लक्षित होता है। दक्षिण या वाम जिस फुस्फुस में रोग का प्रकोप होता है उधर का कन्धा झुका रहता है, जो रोगी के तनकर बैठनेपर मालूम होता है। फुस्फुसगत-क्षय के अधिक बढ़ने पर अङ्गुल्यग्रभाग मोटे मुद्गर सा हो जाते हैं।

सहेतु व्यवायादि शोष एवं रसादिशोषों के लक्षण।

१—व्यवाय शोष—अति मैथुन से होता है।

२— शोक शोष—बहुत शोक या रञ्ज करने से होता है।

३— वार्द्धक्य शोष—असमय के बुढ़ापे से होता है।

४—व्यायाम शोष – शक्ति के बाहर कसरत करने से होता है।

५—अध्व शोष--वहुत राह चलने से होता है।

६—व्रण शोष– व्रण के द्वारा होता है।

७ - उरःक्षत शोष – बक्षःस्थल के आभ्यन्तरिक अवयवों में चोट पहुंचने से होता है। चोट के द्वारा फुस्फुसावरण (Plura) या फुस्फुस में क्षत होनेसे रक्तस्राव होकर बाहर आता है

नोट- यकृत की क्रिया बिगड़ने से भी रक्तष्ठीन होना सम्भव है। कभी कभी यकृत् में विद्रधि (Liver Absses) हो जाती है और इस अवस्था में यकृत् के ऊपर दबाने से कठोरता मालूम होती है तथा बाद में स्पर्शमात्र से वेदना, करवट लेने में कठिनाई तथा ज्वर और खांसी हो जाती है। ऐसी दशा में शल्य चिकित्सा करानी चाहिये।

जीर्णकास, जीर्णज्वर और क्षयरोग के रोगी को उत्तमोत्तम दवा देने पर भी लाभ नहीं हो तो यकृत् की परीक्षा करनी चाहिये कि इसमें शोथादि विकृति तो नहीं हुई है। यकृत् की क्रियाहीनता, यकृत्का घटना (Cirrhosis of the Liver), यकृत् शोथ या यकृत् में पीव पड़ने से मन्द-मन्द ज्वर चढ़ा रहता है और अभूख, दुर्वलता तथा पाण्डुता हो जाती है।

जैसाकि वङ्गसेन जी ने कहा है—

मन्दज्वराग्निः कफ पित्त लिङ्गैरुपद्रुतः क्षीण वलोऽति पाण्डुः। सव्यान पार्श्वे यकृतीत्यादि।

रोगी की देह में मन्द मन्द ज्वर बना रहना, अभूख, कफ, पित्त विकार, निर्बलता और पीयरी हो, तो समझना चाहिये कि दाहिनी पसलियों के नीचे रहनेवाला यकृत् खराब हो गया है।

१—व्यवायशोषी के लक्षण—

व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षय लिङ्गै रुपद्रुतः।
पाण्डुदेहो यथा पूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः॥
(सुश्रुत० उ० अ० ४१ श्लो० १५)

इस शोष में वीर्य क्षय के सभी लक्षण रहते हैं। यानी जननेन्द्रिय और मुष्कों में दर्द, मैथुन में असमर्थता, बहुत देर से प्रसेक होना और उसमें वीर्य या रक्त का थोड़ा रहना। शरीर का वर्ण पाण्डु हो जाता है और विपरीत क्रम से वीर्यादि धातु क्रमशः नष्ट हो जाते हैं।

शोक शोषी के लक्षण—

प्रध्यानशीलः स्रस्ताङ्गः शोक शोष्यपि तादृशः।
विनाशुक्र क्षय कृतै र्विकारै रभि लक्षितः॥
(सु० उ० त० अ० ४१ श्लो० १६)

इसके भी लक्षण व्यवाय शोष की तरह होते हैं, केवल वृषणादि में वेदना नहीं रहती है। जिस वस्तु की चिन्ता रहती है, रोगी सदैव उसीके ध्यान में रहता है।

३—जरा शोषी के लक्षण—

जरा शोषी कृशो मन्द-वीर्य-बुद्धि-वलेन्द्रियः।

श्वसनोऽरुचिमान् भिन्नकांस्य पात्र हतस्वरः ॥
ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनं तथैवारति पीडितः ।
सं प्रस्रुतास्य नासाक्षः शुष्क रूक्ष-मल-छविः ॥
(सु० उ० त० अ० ४१ श्लो० १७-१८)

इसकी देह दुबली हो जाती है। वीर्य-वल-बुद्धि और इन्द्रियां कमज़ोर पड़ जाती हैं। दमा उठता है, कान्ति बिगड़ जाती है। स्वर फूटे कांसे के पात्र की तरह हो जाता है। थूकने पर कफ नहीं आता है भारीपना और बेचैनी रहती है। मुंह नाक और नेत्रों से पानी बहता रहता है। शरीर सूख जाता है और दस्त सूखे लगते हैं।

४—अध्वशोषी के लक्षण—

अध्वशोषीच स्रस्ताङ्गः संभृष्ट-परुष-छवि।
प्रसुप्त गात्रावयवः शुष्क क्लोम१ गलाननः ॥
(सु० उ० त० अ० ४१ श्लो० १६)

इसके अङ्ग शिथिल हो जाते हैं। शरीर की कान्ति आग में भुनी हुई जैसी हो जाती है। शरीर के अवयव छूने से स्पर्श ज्ञान नहीं होता तथा क्लोम, गला और मुंह सूखने लगते हैं।

५—व्यायाम शोषी के लक्षण—

व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः।

---

१ श्वास नलिका

लिङ्गै रुरःक्षत कृतैः संयुक्तश्च क्षतं विना ॥

(सु० उ० त० अ० ४१ श्लो० २०)

इस शोष के रोगी में अश्वशोषी के लक्षण मिलते हैं और क्षत या व्रण नहीं रहने पर भी उरःक्षत के लक्षण पाये जाते हैं।

६—व्रण शोषी के लक्षण—

रक्त क्षयाद्वेदनाभिस्तथै वाहार यन्त्रणात्।
व्रणितस्य भवेच्छोषः सचासाध्यतमोमतः ॥

(सु० उ० त० अ० ४१ श्लो० २१)

यह शोष, व्रणवाले के शरीर से रक्त नष्ट होने और व्रण में वेदना विशेष होने एवं आहार नहीं करने से होता है।

७—उरःक्षत शोषी के लक्षण—

जो व्यक्ति अपनी शक्ति के बाहर—कसरत, भारवहन ऊँचेस्वर से पढ़ना, अति मैथुन और जलप्रतरण एवं वेग के साथ बहुत देर तक नाचना तथा अन्यान्य उरस्य (वक्षःस्थल पर बुरे प्रभाव वाले) क्रूर कर्मों के करने से छाती के भीतरी अवयव फट जाते हैं और रक्त आने लगता है। यदि सावधानी के साथ क्षत आराम नहीं किया जाय तो वह पक जाता है एवं उससे पीव, खून और कफ मिलकर निकते हैं। खाँसते हुए पीला, लाल, असित (धूसर) और अरुण रङ्ग का वमन करता है। रोगी का वक्षःस्थल सन्तप्त रहता है। पसली, पीठ, छाती

और कमर की पीड़ा से बेचैन रहता है। मुंह और नाक से बदबू आती हैं। वर्ण और स्वर बिगड़ जाता है। धातु सूखने लगते हैं एवं वीर्य और ओज के क्षय होने से खून मिला पेशाब हुआ करता है। जैसाकि कहा है—

व्यायाम भारा ध्ययनैरभिघातातिमैथुनैः ।
कर्मणा चाप्युरस्येन वक्षोयस्य विदारितम् ॥
तस्योरसि क्षते रक्तं पूयः श्लेष्माच्च गच्छति ।
कासमान श्छर्दयेच्च पीतरक्ता सितारुणम् ॥
सन्तप्तवक्षो सोऽत्यर्थं दूयनात्परिताम्यति ।
दुर्गन्ध वदनोच्छ्वासो भिन्न वर्ण स्वरोनरः ॥
केषाञ्चि देव शोषोहि कारणैर्भेदमागतः ।
न तत्र दोष लिङ्गानां समस्तानां निपातनम् ॥
क्षयाएत्र हितेज्ञेयाः प्रत्येकं धातु संज्ञिकाः ।

(सुश्रुत० उ० अ० ४१ श्लो० २२ २६)

नोट- यह बहुत कम, किसी-किसीमें पाया जाता है। उरःक्षतकी आरम्भिक दशा में वातादि दोषों के लक्षण नहीं मिलते, लेकिन बाद में इनका अनुबन्ध हो जाता है और कुपित दोष रसादि धातुओं का क्षय करने लगते हैं। इसलिये इस उरःक्षतजन्य क्षय को भी आचार्य्यों ने राजयक्ष्मा के अन्तर्गत ही माना है।

रस क्षय के लक्षण—

हृत्पीड़ा कण्ठशोषौच त्वक्शून्याच रसक्षये ।

(भाव प्रकाश)

अर्थात्—रस के क्षीण होने पर हृदय में पीड़ा, कण्ठ सूखना और त्वचा में शून्यता होती है ।

- रक्तक्षय के लक्षण—

सिराः श्लथाः हिमा मूर्च्छा त्वक्पारुष्यं क्षयेऽसृजः ।

(भाव प्रकाश)

रक्त क्षीण होने पर सिरायें शिथिल तथा शीतल होती हैं, मूर्च्छा आती है और त्वचा कठोर हो जाती है ।

मांस क्षय के लक्षण—

गण्डौष्ठ कन्धरा स्कन्ध वक्षो जठर सन्धिषु ।
उपस्थ स्फिग्पिण्डीषु शुष्कता गात्र रूक्षता ॥
तोदो धमन्यः शिथिलाः भवेयुर्मांस संक्षये ॥

(भाव प्रकाश)

अर्थात्—कपोल, ओष्ठ, गरदन, कन्धे, उदर, सन्धियें, लिङ्ग, चूतड़ और पाँव की पींडरी सूख जाती हैं, शरीर रूक्ष हो जाता है, पीड़ा होती है और धमनियें शिथिल हो जाती हैं ।

मेदाक्षय के लक्षण—

प्लीहाभिवृद्धिः सन्धीनां शून्यता तनु रूक्षता ।

प्रार्थना स्निग्ध मांसस्य लिङ्गं स्यान्मेदसःक्षये ॥

(भाव प्रकाश)

मेदा के क्षय होने पर प्लीहा बढ़जाती, सन्धियें शून्य हो जातीं हैं। शरीर में रूक्षता रहती है और स्नेहयुक्त मांस खाने की इच्छा होती है।

अस्थिक्षय के लक्षण—

अस्थिशूलं तनौरौक्ष्यं नख दन्त त्रुटिस्तथा।

अस्थिक्षये लिङ्गम्। (भाव प्रकाश)

हड्डियों के क्षय होनेपर, हड्डियों में दर्द, देह में रूक्षता तथा नाखून और दाँत टूटने लगते हैं।

मज्जाक्षय के लक्षण—

शुक्राल्पत्वं पर्व भेदस्तोदः शून्यत्व मस्थिनि।

(भाव प्रकाश)

मज्जा धातु के क्षय होने पर वीर्य की कमी, सन्धियों में पीड़ा, टूटना और अस्थियों में शून्यता हो जाती है।

वीर्यक्षय के लक्षण—

शुक्रक्षये रतेऽशक्तिर्व्यथा शेफसि मुष्कयोः ।

चिरेण शुक्रसेकः स्यात्सेके रक्ताल्प शुक्रता ॥

(भाव प्रकाश)

वीर्यक्षय होने पर मैथुन में अशक्ति, लिङ्ग और अण्डकोषों

में पीड़ा और वीर्य देर से स्खलित होता है तथा अल्प और लाल रहता है।

ओजक्षय के लक्षण—

> विभेति दुर्बलोऽभीक्ष्णं चिन्तयेद् व्यथितेन्द्रियः।
> अभ्युत्थायोन्मना रूक्षः क्षामः स्यादोजसः क्षये ॥
>
> (भाव प्रकाश)

ओज क्षय होने पर मनुष्य बराबर डरता है, दुर्बल हो जाता है, चिन्ता तथा इन्द्रियों में पीड़ा होती है। कान्तिहीन हो जाती है, शरीर रूक्ष हो जाता है और उन्मत्त की तरह उठता बैठता है।

संक्षिप्त चिन्ह।

—(:*:)—

नवीन रोगमें ज्वर धीमा रहता है तथा धमनीद्विःघातित१ (Dierotic Pulse) नहीं रहती है। क्रमशः रोग बढ़ने पर ज्वर का सन्ताप १००° फा० से १०४° तक बढ़ता है। जीवाणु-

१ श्वसनक ज्वर (Pneumonia) में यह बात पायी जाती है।

जन्य विष के बढ़ जाने पर ताप अधिक होता हैं। शरीर सूख कर पेट पीठ से जा मिलता है। वज़न धीरे धीरे घटने लगता है। स्वेद निकलता है, श्वास की गति तीव्र हो जाती है। पैखाना बहुत कम होता है। दुर्वलता बढ़ती जाती है। रक्त में श्वेताणुओं की अधिकता से शरीर पाण्डु वर्ण का हो जता है। प्लीहा की वृद्धि रहती है। कभी कभी अच्छी दशा में एकाएक गले में सुरसुराहट होकर विना कष्ट के कम या वेशी रक्तस्राव हो जाता है और अन्य कुछ भी लक्षण नहीं मिलता है। छाती परीक्षा करने पर भी कुछ मालूम नहीं होता एवं रक्तस्राव स्वयं बन्द हो जाता है और कुछ दिनों तक अच्छा रहता है। फिर अचानक खून आने लगता है। पुनः पुनः ऐसा होते-होते कास ज्वर आदि भी हो जाते हैं। और क्षय रोग स्पष्ट हो जाता है।

इस संक्षेप कथन को आप कुछ अंशों में निम्नाङ्कित श्लोकों में भी पायेंगे। यथा—

अग्निमान्द्य' ज्वरः शैत्यंवान्तिः शोणित पूययोः।
सत्व हानिश्च दौर्वल्यं राजरोगस्य लक्षणम् ॥

(रस रत्नसमुच्चये)

तथाच—यक्ष्मारुक्कुरुतेऽरुचिं कृशतनु' सूक्ष्मंज्वरं गौरवम्।
देह अज्जरितं क्षतं च गलके कासाधिकं शोषणम् ॥

इत्यादि। (हंसराज निदाने)

चिन्ह की दृष्टि से यक्ष्मा की अवस्थायें ।
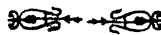
१—रक्ताधिक्य की अवस्था ।

२—घनी भवन की अवस्था ।

३—त्रिवरी भवन की अवस्था ।

१—[क] दर्शन—देखने से विकृत पार्श्व की छाती चिपटी रहती है । छाती की दीवार की त्वचा में सिरायें उभरी हुई रहती हैं । ऊपर की ओर गति कम मालूम होती है और अक्षकास्थि के नीचे का स्थान कुछ धँसा हुआ रहता है तथा कन्धा कुछ लटका हुआ मालूम पड़ता है । स्त्रियों में विकृत पार्श्व का स्तन छोटा होजाता है ।

[ख] स्पर्शन—हाथ रखने पर छाती की गति कम मालूम होती है ।

[ग] अङ्गुली ताड़न (Percussion)—रोगी के वक्षःस्थल पर पर्शुकाओं के मध्य में वामहस्त मध्यामाङ्गुली को रखकर ऊपर से दक्षिण हस्त मध्यमाङ्गुल्यग्रसे प्रतिघात करने पर आवाज़ कुछ मन्द निकलेगी और भीतरी प्रतिक्रिया कुछ अधिक प्रतीत होगी ।

अङ्गुली ताड़न से छाती की पेशियों में एक प्रकार का तरङ्ग रूप कम्पन चिन्ह दिखाई देता है, जिसे - पेशीय क्षोभ (Myoidema) कहते हैं। यह चिन्ह क्षय रहित अन्य दुर्बल रोगियों में भी पाया जाता है।

[घ] श्रवण— श्वास की आवाज़ श्रवणयन्त्र (Stethescope) द्वारा सुनने पर कुछ कम सुनाई देती है। प्रश्वास अधिक काल तक और निःश्वास झटके के साथ सुनाई देता है। कहीं कहीं बाल मर्दन ध्वनि (Rales) और साँय-साँय (Ranchi) सुनाई देता है। फुप्फुसावरण में पानी आने से प्रस्तरज संहत ध्वनि (Stonydullness) और खांसी के साथ प्रवृद्ध स्वरयन्त्र शब्द (Broncho-phony) सुना जाता है।

२- घनी भवन की अवस्था—इस अवस्था में पूर्वोक्त सभी चिह्न स्पष्टरूप से मालूम पड़ते हैं।

३ —विवरी भवन की अवस्था— इस अवस्था में छाती की आकृति में भेद हो जाता है। कन्धा नीचे की ओर झुका रहता है। अंसफलक पृष्ठवंश की ओर अधिक झुका रहता है। इसके अतिरिक्त ऊपर की पर्शुकायें दूर और नीचे की नज़दीक रहती हैं। श्रवणयन्त्र से परीक्षा करने पर आवाज़ की गूँज बड़े जोर के साथ सुनाई देती है। इस शब्द की तीव्रता विवर की स्थिति पर निर्भर है। बोलने

की आवाज़ भी बड़े ज़ोर के साथ बिल्कुल कानों के पास सुनाई देती है जिसे पोटोरेलोज़नी (Peetorelogny) कहते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के बालमर्दनवत् खड़खड़ाहट (Rales) भी सुनाई देते हैं। विवर (Cavity) की कमी वेशी के अनुसार न्यूनाधिक प्रतिध्वनि
(Resonance) दोहरीमुठिये में बोलने के समान शब्द Amphoric) और स्वर यन्त्रके तेज एवं कठोर शब्द (Tubuler breathing) की अपेक्षाकृत अधिक शब्द Caveruons breathing), कैकट् शब्द, पट् शब्द आदि सुने जाते हैं। विवर खूब बड़ा होने पर प्रवृद्ध स्वर यन्त्र शब्द (Bronchophony) या स्वर कम्पन खूब अधिक सुना जाता है। इसके अतिरिक्त धातु पात्रज टन् टन् शब्द (Metalic tink ling) भी सुनाई देता है।

अरिष्ट लक्षण।

१—क्षयरोगी के नेत्रों का सफेद होना, अन्न में अरुचि होना और ऊर्ध्वश्वास चलना अरिष्ट (मृत्यु कारक) चिह्न है।

२—क्षयरोगी को कष्ट के साथ बहुत वीर्य गिरना भी अरिष्ट लक्षण का परिचायक है।

३ - खूब भोजन करनेपर भी क्षीणता बढ़ते जाना नियत मरणाख्यापक लक्षण है।

४—क्षयरोग में अतिसार का उपद्रव होना भी मृत्यु प्रदायक है।

५—उदर और अण्डकोष में शोथ हो जाना क्षयी मनुष्य के लिये मृत्यु कारक लक्षण है।

उपद्रव।

स्वरयन्त्र का शोथ, फुफ्फुसावरण का शोथ, रक्तष्ठीवन, वमन, अतिसार, भगन्दर, कुकुन्दरास्थि (Ischiumbone) और गुदनलिका का व्रण आदि क्षयरोग के उपद्रवरूप हैं।

रोग निश्चय।

जब यक्ष्मा रोग पूर्ण विकसित हो जाता है, तो उसकी निश्चिति सरलता पूर्वक हो सकती है, किन्तु रोग को अच्छा करना आसान नहीं है। इसलिये आरम्भिक अवस्था में ही रोग का निदान होना आवश्यक है। चिकित्सक लोग क्षयरोग का पता निम्नलिखितानुसार लगाते हैं।

१— कुलवृत्त— इससे पता लगता है कि रोगी में क्षय की प्रवृत्ति वंश परम्परागत है या नहीं ?

२- पूर्ववृत्त—इसके द्वारा बार-बार प्रतिश्याय, खाँसी, रक्तस्राव मंदाग्नि और अतिसार आदि होने का इतिहास मिलता है।

३—वर्तमान कालिक स्थिति—शरीर क्षीण या पुष्ट है, छाती की आकृति विकृत या स्वाभाविक है। पाण्डुता, गालों पर लाली, हाथ की अङ्गुलियों के नखों का दबा हुआ होना, भूख नहीं लगनी, दीर्घकाल से कण्ठशोथ होना, कण्ठ, बगल या अन्यत्र की ग्रन्थियों का फूलना, थोड़े परिश्रम में ही दम फूलना, प्रातःकाल सोकर उठने पर थकावट सी मालूम होनी, दतौन करते समय गाढ़ा गहरेपीला या हलके हरे रङ्ग का कफ निकलना, प्रतिदिन सन्ध्या समय स्वाभाविक गात्र ताप से अधिक तापमान का रहना, कुछ दिनों से रात में पसीना होना, निरन्तर खाँसी होनी और वज़न कम होते जाना आदि।

४—धमनी (नब्ज) परीक्षा—अपेक्षाकृत कराङ्गुष्ठ मूल गत धमनी की गति का तेज रहना।

५—रक्त परीक्षा—इस परीक्षा में रक्तचाप (Bocld pressar) की कमी और क्षय जीवाणु (T.B.) की उपस्थिति देखी जाती है।

६—कफ परीक्षा—ओजो धातु (Albumine) और क्षय-जीवाणु आदि का होना।

७—फुस्फुसगति परीक्षा—दृष्टि द्वारा और वक्षःस्थल पर हाथ रख कर की जाती है।

८—एक्स-रे (X-rays) परीक्षा – यह सावधानी पूर्वक होनी चाहिये नहीं तो प्रायः रोग निदान में भूल होती है।

९—अङ्गुलीताड़न—इससे मालूम किया जाता है कि फुस्फुसावयव रोग रहित या रोगयुक्त हैं।

१०—श्रवण यन्त्र (Stathescope)—इससे बहुत अंशों में स्वस्थ और रोगयुक्त फुस्फुस की दशा का परिज्ञान किया जाता है।

११—उपर्युक्त परीक्षाओं के अतिरिक्त बच्चों के क्षय सम्बन्ध में एक और परीक्षा होती है जिसे ट्युबर्कुलिनटेस्ट = Tuberculintest[१] कहते हैं। यह देखा गया है कि नवजात शिशु में अधिक मात्रा से ट्युबर्कलिन प्रविष्ट करने पर भी कुछ प्रतिक्रिया नहीं पायी जाती है और जैसे-जैसे आयु बढ़ती है वैसे वैसे प्रतिक्रिया अधिक मनुष्यों में पायी जाती है; इसके मिलने का अर्थ है कि उस व्यक्ति में यक्ष्मारोग का उपसर्ग उपस्थित है।

इन परीक्षाओं के द्वारा निश्चय पूर्वक क्षयरोग का निदान किया जा सकता है।

---

१ A 10% normal caustic soda extract of tnbercle bacilli, filtered and neutralized.

यक्ष्मा से बचने के उपाय ।

१—प्रकाशयुक्त हवादार एवं स्वच्छ कमरेमें रहना चाहिये। एकहीं कमरे में बहुत आदमियों के साथ या यक्ष्मा रोगी के साथ सोना, भोजन करना आदि और यक्ष्मा रोगी के पास बहुत देर तक रहना नहीं चाहिये। इसके निःश्वास से रोग का संक्रमण होता है। जैसाकि आचार्य सुश्रुत ने कहा है—
प्रसङ्गाद्गात्र संस्पर्शान्निः श्वासात्सह भोजनादित्यादि।
(सु० नि० अ० ५ श्लो० २६-३०)

२ कम आयु में विवाह नहीं करना चाहिये। यदि माता पिता को क्षयरोग हुआ हो तो उनके लड़कों को बचपन से ही स्वास्थ्य पर ध्यान होना चाहिये।

३—सर्वदा प्रसन्न रहना एवं स्वच्छ वायु और शुद्ध जल तथा सह्यमत सूर्य किरणों का सेवन करना चाहिये।

४—यथाकाल मल मूत्रादि त्याग, शक्ति के अनुकूल काम और वीर्य रक्षा करनी चाहिये।

५—बासी एवं धूल और मक्खियों से दूषित आहार द्रव्य तथा अधिक मद्य सेवन नहीं करना चाहिये। धूल और गन्दी हवा से मुंह पर कपड़ा डालकर दूर हो जाना चाहिये। पौष्टिक एवं सुपाच्य भोजन नियत काल पर शुद्ध स्थान में

शुद्धता पूर्वक करना चाहिये। एक पात्र में अकेला ही खाना चाहिये।

रोगी परिचर्या।

क्षयरोगी बरामदे में या हवादार कमरे में सोवे और आराम करे। ताकत बढ़ानेवाली चीजें; अण्डा, दूध, घी, मक्खन, मांस, दही, फल आदि खाय। खुली हवा में टहले और विश्राम करे। जो सम्पन्न हों वे जल वायु परिवर्तन के लिये उत्तम हवा पानी के स्थान पर जायँ जो इसके लिये प्रसिद्ध हैं। जैसे – मंशूरी, दार्जिलिङ्ग, पुरी आदि। देवदारु के वृक्षों की हवा इस रोग में लाभदायक है। रोगी के निवास स्थान पर गूगल, धूप, धूना, कूठ, लोहवान और गोघृत को हवि हमेशा — अजाविट् की जलतीहुई अंगेठी में थोड़ी-थोड़ी छोड़नी चाहिये। इस धूपन क्रिया का बहुत अच्छा प्रभाव होता है। पाठक! निम्नलिखित वैदिक मन्त्रों में उक्त हवि कि यक्ष्मा रोग नाशकता को देखें। यथा —

विद्म वै ते जायान्य जानं यतो जायान्य जायसे।
कथंह तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मोहविर्गृहे॥

(अथर्ववेद का० ७ अ० ७ सू० ८१)

सा० भा०–हे जायान्य जायाभ्य आगत राजयक्ष्माख्य रोग ते तव जानम् जन्म उत्पत्ति निदानं वा विद्म वैजानीमः

खलु । हे जायान्य जायासम्बन्धादागतरोग यतः यस्मान्नि-दानात् जायसे उत्पद्यसे तन्निदानं जानीम इति सम्बन्धः । एवं तवोत्पत्तिं जानाना वयंयस्य यजमानस्य गृहे हविः रोग निर्हरण क्षमेन्द्रादि देवता सम्बन्धि आज्यादि रूपं कृण्मः कुर्मः देवतोद्देशेन तदुचितं हविः प्रक्षिपामः तत्र तस्मिन् यजमाने हे क्षय रोग त्वंकथं केनप्रकारेण हन्याः । यद्रोग निहरणार्थं यत्र देवता इज्यते तत्र राजयक्ष्माख्य रोगो न बाधत इत्यर्थः ।

हिन्दी—पुरोहित की उक्ति है कि—ऐ जायासमागत (स्त्री सम्भोग से प्राप्त) यक्ष्मा रोग । मैं निश्चय तुम्हारी उत्पत्ति कारण को जानता हूं । जिस यजमान के घर रोग विनाशन समर्थ आज्यादिरूप हवन करूंगा, वहां तुम कैसे ठहर सकते हो । अर्थात् कदापि नहीं । अन्यच्च—

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते ।
यं भेशजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥

(अथर्ववेद का० १९ अ० ५ सू० ३८)

सा० भा०—न तं यक्ष्मा, इति पञ्चमं सूक्तम् । तस्य ऐतु देवः, इति उत्तर सूक्तस्य पुरोहित कर्तव्ये रात्रौ राज्ञः शय्या गृह प्रवेशन कर्मणि गुग्गुलु धूपं कुष्ठौषधि धूपञ्च दद्यात् ।

तं राजानं यक्ष्मा व्याधयो नारुन्धते रोधं न कुर्वन्ति न पीडयन्ति । तथा एनं राजानं शपथः परकृतोऽभिशापो

नाश्नुते न व्याप्नोति न स्पृशति तम् इत्युक्तम् कम् इत्याह । यं राजनं भेषजस्य औषधि रूपस्य गुग्गुलोः एतन्नामकस्य सुरभिः घ्राण सन्तर्पको गन्धो अश्नुते व्याप्नोति । तम् इति ।

हिन्दी --उस राजा को यक्ष्मा रोग नहीं पीड़ित करता है एवं उस पर परकृत अभिशाप का भी प्रभाव नहीं पड़ता है जिसे घ्राण सन्तर्पक गूगल की सुगन्ध मिलती है। तथाच —

विश्वञ्च स्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते ।
यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम् ॥
उभयोः अग्रभम् नामास्मा अरिष्ट तापये ।

(अथर्ववेद का० १९ अ० ५ सू० ३८)

सा० भा०—तस्मात् यं भेषजस्येति उक्ताद् गुल्गुलुगन्धं आघ्रातवतः सकाशाद् यक्ष्माः व्याधयो विश्वञ्चः विश्वगञ्चना नानादिगभिमुखाःसन्त ईरते वेगेन धावन्ति । ईरणेदृष्टान्तः । मृगा अश्वाइव । अश्वा आशुगामिनो मृगा इव हरिणादय इव । अथवा मृगाइव अश्वाइव उभयेषामपि आशुगमन संभवात् । गुल्गुलुः औषधंयत् यदि सैन्धवं सिन्धुदेशजम् । यद्वापि समुद्रियम् समुद्र भवमसि । हे गुल्गुलो उभयोः विधयोस्तवस्वरूपयोः नाम अग्रभम् गृह्णामिकीर्तयामि । किमर्थं अस्मै प्रसक्ताय प्रवर्तमानाय अरिष्ट तापये अरिष्ट कर्त्रे रोगाय द्वेष्याय वा तत्परिहारायेत्यर्थः ।

हिन्दी—इसलिये जो गूगल की गन्ध लेता है उसके पास से यक्ष्मारोग घोड़े और हरिण की तरह चौकड़ी भरतेहुए भाग

खड़े होते हैं। गूगल सिन्ध प्रान्त का हो या सामुद्रिक प्रान्तों का हो, दोनों ही की प्रशंसा करता हूं क्योंकि इस मारक रोग से दनों बचाते हैं। औरभी—

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञात यक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्। ग्राहिर्जग्राहयद्येत देनं तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तमेनम्। (अथर्ववेद—का० ३ अ० ३ सू० ११)
सा० भा० हे व्याधिग्रस्त त्वा त्वां हविषा अन्नेन अज्ञात् यक्ष्मात्। अयम् एतत्संज्ञक इति अप्रज्ञातः शरीर गतो रोगः अज्ञातयक्ष्मः। तादृशाद्रोगाद् मुञ्चामि विश्लेषयामि। किमर्थं जीवनाय। कम् इति पूरणः। तथा ग्राहिः ग्रहणशीला पिशाची (यदि) एतत् इदानीम् एनम् बालकम् जग्राह गृहीतवती तस्याः सकाशात् हे इन्द्राग्नी युवाम् एनं प्रमुमुक्तम् प्रमोचयतम्।

हिन्दी—मैं तुझे हवि के द्वारा अज्ञात रूप में प्रवेश करने वाले यक्ष्मारोग से मुक्त करता हूं और जिसने राजा चन्द्र को पहिले ग्रहण किया था उस यक्ष्मा रोग से तुझको चिरकाल तक जीवित रहने के लिये छुड़ाता हूं और हे इन्द्र और अग्निदेव ग्रहण करने के स्वभाव वाली जिस पिशाची ने यदि इस अबोध को ग्रहण कर लिया हो तो आप इसको उससे छुड़ाइये।

सूखने पर भी क्षय जीवाणु मरते नहीं हैं, इसलिये रोगी का बलगम, पैखाना, और पेशाब ढँक कर रखना चाहिये और निर्जन

स्थान में चूने का तह देकर गहरे गड्ढे में गाड़ दे या जला डाले तथा इस रोगी के वस्त्रों को अन्य व्यक्तियों को व्यवहार में नहीं लेना चाहिये। क्षयी के कपड़ों की धुलाई तालाव और कुएं से अलग ही सोडे के साथ उबाल कर करनी चाहिये। क्षयरोगी के लाश को यथाकाल भस्म कर देनी चाहिये। क्षयरोगी के परिचारक को चाहिये कि वह अपने हाथों को गरम जल और जन्तुघ्न साबून से धोकर अन्य कार्य में लगे। रोगी को गृहासक्त रहना भयावह है क्योंकि यह रोग वंशपरम्परागत होते देखा गया है। क्षयरोगी को सुन्दर जलवायु की जगह वाटिका में या गङ्गा के किनारे, समुद्रतट तथा सिमलादि पर्वतों पर पावन कुटी में निवास करना चाहिये। बकरी और हरिण का सेवन इस रोग से मुक्त कराने में बहुत सहायक है।

जैसाकि आचार्य "चक्रपाणि जी" ने कहा है—

छागोपसेवा शयनं छागमध्येतु यक्ष्मनुत्।

बकरियों के बीच में रहना एवं इन्हीं के मध्य में सोना यक्ष्मा रोग को दूर करता है।

जाति समता रखने वाले हरिण के चर्म पर शयन का भी ऐसाही प्रभाव निम्नाङ्कित मन्त्र में लिखा है। यथा—

अदोयदवरोचते चतुष्पक्षमिवच्छदिः
तेनाते सर्वं क्षेत्रिय मङ्गेभ्यो नाशयामसि॥

(अथर्ववेद का० ३ अ० २ सू० ७)

सा० भा०— अदः परिदृश्यमानं यद्भूमौ आस्तृतं हरिणं चर्म अवरोचते । कि मिव चतुष्पक्षम् चतुष्कोणं छदिरिव । छाद्यते अनेन गृहम् इति छदिस्तृण कटः स इव । तेन पुरोवर्तिना चर्मणा हे रुग्ण ते तव सर्वं क्षय (यक्ष्मा) कुष्ठादि रूपेण बहुविधं क्षेत्रियं रोगं अङ्गेभ्यः कृत्स्नावयवेभ्यः नाशयामसि नाशयामः ।

हिन्दी – यह जो भूमि में बिछाहुआ हरिण का चर्म चार कोने वाले तृणकट के समान शोभा पा रहा है, हे रोगिन् ? उस सामने के हरिण चर्म से मैं तेरे क्षय कुष्ठ आदि अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करता हूं ।

नोट – भारतवर्ष के निम्नलिखित जिलों में बकरियां बहुतायत से पाली जाती हैं और उन्हें दूध भी काफी होता है ।

यथा—गोंडा बलरामपुर, सिंगीपुर, सीतापुर, हरदोई, साहजहाँपुर, बांसबरेली, टोंडिला, रामपुर, अलमोड़ा और फ़रुखाबाद ।

—(:*:)—

राजयक्ष्मा रोग में मानसोपचार ।

विशेषज्ञों को विदित हैं कि मानसिक विचारों का शरीर पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है । शारीरिक शक्ति का ह्रास

एवं कठिन रोग का कारण दुर्बल मानस है। कितने मनुष्य हैजा, प्लेग होने पर उसके भय मात्र से मर जाते हैं। वे इतने डर जाते हैं कि मामूली एकही दस्त या कै में चारपाई पर गिर जाते हैं। उधर गिल्टी निकली और ज्वर आया इधर रोगी के होश उड़ गये, घरवाले भी ऐसे डर जाते हैं कि प्राय: रोगी के पास नहीं जाते हैं। इससे रोगी और भी भय खाकर दृढ़ सङ्कल्प कर बैठता है कि हमारा अन्त है। फल भी सङ्कल्प के अनुकूल ही होता है। मानसिक कमज़ोरी से कितने ही स्वयमेव अपने को रोगी बना लेते हैं। अत: चिकित्सक को चाहिये कि शारीरिक चिकित्सा के साथ-साथ ज्ञान विज्ञान धैर्य आदि द्वारा मन: शक्ति को बढ़ावे, नहीं तो मोहवश बुरा निश्चय रोगी के लिये घातक होना है। जैसाकि कहा है—

"यादृशीभावना यस्य सिद्धिर्भवतितादृशी"

संसार आशा पर चल रहा है, निराशा हमारा प्रबल शत्रु है। चित्त वृत्ति निरोध कुशल चिकित्सक मृगचर्म पर बैठ हाथ में कुशा लेकर निम्नलिखित वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ रोगी के शरीर में अपनी शक्ति का सञ्चार इस भावना से करे कि इसका रोग दूर हो रहा है। शक्ति सञ्चार शरीर पर कुशा लेकर किया जाता है। वैदिकमन्त्र—

यदिक्षितायुर्यदि वा परे तो यदि मृत्योरन्तिं नीतएव।
तमाहरामि निर्ऋते रूपस्था दस्पर्शमेनं शत शारदाय॥

(अथर्ववेद का० ३ अ० ३ सू० ११)

हिन्दी—यदि यह पुरुष (रोगी) क्षीणायु हो गया हो और इस लोक से जाने वाला हो और यमराज के पास पहुंचा हुआ हो तो भी मैं इस पुरुष को मृत्यु के समीप से इस लोक में लाता हूं और लाकर इसको सौ वर्ष तक जीवित रहने के लिये प्रबल करता हूं। और भी—

आते प्राण सुवामसि परायक्ष्मं सुवामिते।
आयुर्नोविश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः ॥

(अथर्ववेद का० ३ अ० ५ सू० ५५)

हिन्दी—हे आयुष्काम ? हम तेरे प्राणों को लाते हैं तथा तेरी आयु के प्रतिबन्धक यक्ष्मा रोग को पराङ्मुख करके भेजते हैं और यह आहूयमान वरणीय अग्निदेव हमारे इस आयुष्काम की सब प्रकार से सौ वर्ष तक की आयु करें। तथाच—

मा बिभेर्नमरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमित्वा।
निर वोचामहं यक्ष्म मङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ॥

(अथर्ववेद का० ५ अ० ६ सू० ३०)

हिन्दी—ऐ रोगी! तू न डर, मैं तुझको बुढ़ापे तक इस लोक में व्याप्त रहने वाला करता हूं। मैं कहता हूं कि—तेरे अङ्गों से यक्ष्मारोग और अङ्ग ज्वर निकल गया है।

अपिच— अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः।
यक्ष्मः श्येन इव प्रापप्तद् वाचासाढः परस्तराम् ॥

(अथर्ववेद का० ५ अ० ६ सू० ३०)

हिन्दी—जो तेरे अङ्गों में भेद होता था, जो अङ्गों में ज्वर व्याप्त था और जो तेरा हृदय का रोग था और जो तेरा राजयक्ष्मा रोग था वह मन्त्र शक्ति रूप वाणी से अनादृत होकर बाज पक्षी की तरह बहुत दूर जाकर गिर पड़ा है।

शरीर पर दृढ़ इच्छा शक्ति का प्रभाव प्रसिद्ध है। इसीके द्वारा "भीष्म" मृत्यु को भी अपने आधीन किये थे। सम्मोहन विद्या (Hypnotism) का विशेषज्ञ प्राणाचार्य उक्त शक्ति का रोगी पर सफल प्रयोग कर सकता है।

शयन प्रकार—रोगी सोने के समय बिस्तर पर चित्त लेटे और पैरों के नीचे एक तकिया रखले फिर गम्भीर श्वास ले और शिथिल हो जाय; वेदनायुक्त स्थान पर अधिक काल तक हाथ रखकर ऐसी भावना करे कि मेरा रोग निमूर्ल हो रहा है जब निद्रा आने से पलकें भारी होने लगें तो ऐसी भावना कर सोओ कि मैं प्रातःकाल पूर्ण स्वस्थ एवं ताजा होकर उठूंगा। मेरा मस्तिष्क और चित्त प्रफुल्लित होगा।

इसी भाव का एक मन्त्र अथर्ववेद में आता है। जैसाकि—

स्वप्नाभिकरणेन सर्वं निष्वापयाजनम्।

ओत् सूर्य मन्यान स्वापया व्युषंजागृतादह मिन्द्र

इवारिष्टो अक्षितः॥ (अथर्व० का० ४ अ० २ सू० ६)

हे स्वप्न के अभिमानी देव! स्वप्न का जो शय्या आदि अधिष्ठान है उसके द्वारा आप इन सबको सूर्य के उदय तक निद्रित रखिये, इस प्रकार सबके सोने पर मैं अहिंसित और क्षय

रहित होकर इन्द्र के समान भोग परायण होकर उषः काल तक सोकर उठूं ।

सदैव बिस्तरे से उठकर शौचादि क्रिया के बाद खुली जगह में अमृतमय वायु से फेफड़ों (Lungs) को खूब भरो और खाली करो, इस प्रकार दीर्घ प्रश्वास निःश्वास की क्रिया जबतक हो सके करो । जब फेफड़े थक जायँ और हृदय धड़कने एवं रक्त तेजी से दौड़ने लगे तो इस क्रिया को बन्द कर विश्राम करो । सदा प्रसन्नचित्त रहो, प्यास लगने पर पानी धीरे-धीरे पीओ और यह भावना करो कि पानी के प्रत्येक घूंट से जीवन तत्व हमारे शरीर में जा रहे हैं । भोजन करते समय भी यही भावना करो कि मैं प्रत्येक आहारों से पोषक तत्व ग्रहण कर रहा हूं । आपका शरीर यन्त्र है । इसे आप सुन्दर स्वास्थ्य पूर्ण बना सकते हैं । सिद्धि में विमम्ब इच्छा शक्ति की शिथिलता से होता है । क्रिया के साथ दृढ़ संकल्प, श्रद्धा और पूर्ण भक्ति होते ही फलोदय अवश्य होता है ।
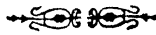
यक्ष्मा पर जल का प्रभाव ।
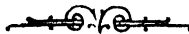
इस रोग में जलावगाहन परम लाभप्रद है । जैसाकि कहा भी है—

स्नानादिना ना विधिना जहाति मासादशेषं नियमेन शोषम् ।

(सुश्रुत० उ० त० अ० ४१ श्लो० ५४)

नियमानुकूल स्नानादि विधियों द्वारा महीने भर में यक्ष्मा रोग जड़ से चला जाता है।

चिकित्सक चूड़ामणि चरक ने भी लिखा है कि —

स्नेह क्षीरोऽम्बु कोष्ठे तं स्वभ्यक्तमवगाहयेत् ।
स्रोतो विबन्ध मोक्षार्थं वल पुष्टयर्थं मेव वा ॥

(चरक चि० अ० ८ श्लो० १६८)

क्षयरोगी के शरीर पर तैल मर्दन कर स्नेह, दूध या जल की कोठी१ में बिठाकर अवगाहन कराने से स्रोतों के रुकावट खुल जाते हैं और वल पुष्टि होती है।

जर्मन डाक्टर "लुइकुने" (Author of Hydropathy) ने इस जल चिकित्सा से विश्व विख्यात अक्षय यश प्राप्त किया है। चिकित्सा कार्य में सहज प्राप्य जल: सभी औषधियों में प्रधान एवं प्राणी मात्र के लिये अम्बर-पीयूष (Oxy-gen) साही परम आधार भूत है। जैसाकि भावमिश्र ने कहा है—

"लघ्वच्छं२ रस कारणं निगदितं पीयूषवज्जीवनम्" ।

१ टब=Tub (स्नान पात्र)। २ लघु जल (Soft water)

सुश्रुत ने इसेहीं गुणद कहा हैं। यथा —

निर्गन्ध मव्यक्त रसं तृष्णाघ्नं शुचि शीतलम् ।
अच्छ लघु च हृद्यञ्च तोयं गुणद उच्यते ॥

(सु० सू० अ० ४५ श्लोक १२)

हिन्दी—उत्तम जल हलका, स्वच्छ, रस का उपादान कारण और अमृत के समान जीवनदायक है।

जल के उपर्युक्त गुण सर्वथा सत्य हैं। वैदिक मन्त्रों ने भी जल के विषय में ऐसाही कहा है। यथा—

अप्स्वन्तर ममृतमप्सु भेषजम्।
अपामुत प्रशास्तिभि रश्वा भवथ वाजिनो गावो
भवथ वाजिनीः ॥

(अथर्ववेद का० ३ अ० २ सू० ७)

अर्थात्— जल में अमृत (जीवन तत्व) है, जल में औषधि है। जल के कारण हीं अश्व वली और गवादि पशु दूधार होते हैं। और भी—

आप इद्वा उभेषजी रापो अमी चातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजी स्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥

(अथर्व० का० ३ अ० २ सू ७)

अर्थात्—(आप) जल (इद्वाउ) भी (भेषजीः) औषध है (आपः) जल हीं (अमीवा चातनीः) अमृत के समान रोग नाश करने वाला है। (आपो विश्वस्य भेषजीः) जलही संसार की सभी औषधियों की औषधि है। (तास्त्वा) उनके द्वारा तुझे (क्षेत्रियात्) रोगों से छुड़ाता हूं।

इसी प्रकार अनेक मन्त्रों में जल के गुण वर्णित हैं जिन्हें ग्रन्थ विस्तार के भय से नहीं लिखता हूं।

अब आप प्रसिद्ध प्राचीन चिकित्सक धन्वन्तरि" वर्णित जल के गुणों को पढ़ें ।

साधारणं जलं रुच्यं दीपनं पाचनं लघु ।
श्रम तृष्णापहं वात-कफ-मेदोघ्न पुष्टिदम् ॥
पानीयं मधुरं हिमं च रुचिरं तृष्णाविशोषापहम् ।
मोहं भ्रान्ति मपा करोति कुरुते भुक्तान्न पक्तिं पराम् ॥
निद्रालस्य निरासनं विषहरं भ्रान्तार्त सन्तर्पणम् ॥
नृणां धी बल बुद्धि वीर्य जननं नष्टाङ्गपुष्टिप्रदम्[१] ।

(राज निघण्टुः)

हिन्दी—जल रुचिकारक, दीपन, पाचन और हलका है। थकावट, प्यास, वायु, कफ और मेद को नष्ट करता और शरीर को परिपुष्ट करता है। मधुर शीतल और प्रिय है, क्षय, मोह भ्रम, निद्रा, आलस्य और विष हटाने वाला है। दुःखियों का पोषक, बुद्धि, बल, वीर्य को देनेवाला तथा नष्ट अङ्ग को फिर पुष्ट कर देता है। जैसाकि निम्नलिखित वैदिक मन्त्र भी कहता है—

आपो अग्रं दिव्या औषधयः ।
तास्ते यक्ष्ममेनस्य मङ्गादङ्गादनीन शन ॥

(अथर्व० का० ८ अ० ४ सू० ७)

---

१ डाक्टर लुई कुने ने एक कुत्ते की टूटी हड्डी को जल के प्रभाव से ठीक होते देख कर जल के गुणों से प्रभावित हो जल चिकित्सा का अनुसन्धान आरम्भ किया था।

मन्त्रार्थ - जो जल सामने वर्तमान है और जो दिव्य औ-षधियें हैं, हे रोगिन्! वे तेरे पाप कर्मों के कारण उत्पन्न हुए राजयक्ष्मा रोग को अङ्ग प्रत्यङ्गों से निकाल कर फेंक दें।

"चरक" ने क्षयरोगी को जीवन्त्यादि उद्वर्तन (उबटन) या सपेद सरसोंका कल्क और सुगन्धित द्रव्य (चन्दनादितैलवगैरह) मालिश कर जीवनीयगणोक्त औषधियों के क्वाथ से ऋतु के अ-नुकूल सुखदायक स्नान कराना लिखा है और बादमें स्वच्छ वस्त्र, सुगन्ध द्रव्य आदि धारण कराना कहा है। यथा—

गौर सर्षपकल्केन गन्धैश्चापि सुगन्धिभिः।
स्नायादृतु सुखैस्तोयै जीवनीयौषधैः श्रितैः॥
गन्धैःसमाल्य वासोभिरित्यादि।

यक्ष्मा में जलवायुपरिवर्तन।

परिवर्तन का स्थान निम्नाङ्कित प्रकार का होना चाहिये।

जहां की हवा शुद्ध और सूखी हो, न बहुत उष्ण और न बहुत शीत हो, वर्षा अधिक न हो और प्रचण्ड सूर्यताप भी न हो। ज्वर और काफी कमज़ोरी न हो ऐसी अवस्था में पहाड़ी स्थान पर रहना अच्छा है। इसकी उपादेयता वेद भी मानता है। यथा—

मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परुष्परुरा विवेशायो अस्य ।
योअभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन् सचतां पर्वतांश्च ॥
(अथर्व वेद—का० १ अ० ३ सू० १२)

हिन्दी—जिस पुरुष को (शीर्षक्त्या) शिरो रोग (उतप) और जो (कासः) खांसी तथा (अभ्रजा) वर्षाकालिक रोग (वातजा) वातव्याधियां और (शुष्मो) शोष रोग आदि हैं, जो (परुष्परु) पर्व-पर्व, नस-नस और गांठ गांठ में व्याप्त हो गये हैं, वह (वनस्पतीन्) भाँति-भाँति की वनस्पतियों से आच्छादित (पर्वतांश्च) पहाड़ों पर जाकर (सचतां) वायु सेवन करें ।

यक्ष्मारोग की दूसरी-तीसरी अवस्था में सामुद्रिक स्थान पर रहना लाभकारी है । जिनको रक्तष्ठीवन, कास; स्वरयन्त्र-शोथ, हृदय दौर्बल्य और श्वास कष्ट हो उनके लिये सामुद्रिक-स्थान का रहना परम् शान्तिदायक है । सवेरे और सन्ध्या समय में शरीर पर सूर्य किरणों का पड़ना रोग नाशक है । इन समयों में सूर्य से खाद्योज (Vitamine) बनानेवाली किरणें (Ultra violet rays) निकलती हैं, जिनसे रोगक्षमता की वृद्धि और जीवाणुओं का नाश होता है । जैसाकि अनेक वैदिक मन्त्रों में भी कहा है—

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः ।
ये अन्तः क्रिमयो गवि इत्यादि ।
(अथर्व वेद—का० २ अ० ६ सू० ३२)

हिन्दी—उदय और अस्त होते हुए सूर्य-कण-कण में फैलने वाली अपनी किरणों से शरीर के भीतर रहने वाले जीवाणुओं को मार डालें। और भी—

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
दृष्टांश्च घ्नन्न दृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमिन्॥
(अथर्व० का० ५ अ० ५ सू० २३)

हिन्दी—सम्पूर्ण प्राणियों से देखे हुए सूर्यदेव न दीखने वाले कीड़ों का संहार करने वाले हैं। वे दीखते हुए और न दीखने हुए सम्पूर्ण क्रिमियों का मर्दन करते हुए पूर्व दिशा से उदय होकर आ रहे हैं। तथाच—

माते प्राण उपदसन्मो आपानोपिधायिते।
सूर्यस्त्वाधिपति मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः॥
(अथर्व० का० ५ अ० ६ सू० ३१)

सा० भा०—माते प्राणः उपदसत् मो इति अपानः अपिधायिते। सूर्यः त्वा अधिपतिः मृत्योः उत्ऽआयच्छतु रश्मिभिः।

हिन्दी—ऐ रोगी पुरुष! तेरे प्राण क्षीण न होवें, तेरा अपान वायु न ढँक जावे, अधिपति सूर्यदेव तुझे अपनी किरणों द्वारा मृत्यु से बचावें।

यक्ष्मा में लाभकारी आहार निर्देश।

राजयक्ष्मा रोग में आहार का अधिक महत्व होता है। चिकित्सा में यश, अपयश की प्राप्ति आहार पर बहुत कुछ निर्भर करती है। इसलिये युक्ति पूर्वक योग्य भोजन रोगी की पाचन-शक्ति और रुचि के अनुकूल देना चाहिये। जैसाकि युक्ताहार के विषय में कहा है—

अन्नेन पूरयेदर्द्धं तोयेन तु तृतीयकम्।
उदरस्य तुरीयांशं संरक्षेद्वायु चारणे॥

(तत्वज्ञान)

उदर (पाकस्थली=Stomach) का आधा अन्न से और तीसरा हिस्सा जल से भरना चाहिये और शेष चौथे हिस्से को वायु संचार के लिये खाली छोड़ रखना चाहिये।

स्नेह—स्नेह युक्त आहार से शरीर की प्रतिकार शक्ति बढ़ती है और रोगी दुबला होंने नहीं पाता है; यदि वेदना विशेष से एक दो दिन आहार नहीं भी खाये तो रोगी निर्बल नहीं होता।

प्रोटीन—प्रोटीन से शरीरे की सहज शक्ति बढ़ती है।

कार्बोज—कार्बोज से रोग प्रसार में सहायता मिलती है।

खटिक—खटिक से खटिकावरण में सहायता मिलती है।

इसलिये क्षय रोगी की आहार राशि में प्रोटीन (Protin) वसा और खटिक (Calcium) की मात्रा विशेष होनी आवश्यक है।

सुपथ्य द्रव्य—बकरीका दूध, दही, मट्ठा, मक्खन, घी, मलाई आदि। बकरीके दूध आदि के अभाव में स्वस्थ गाय का दूध लेना चाहिये। जो रोगी वसा नहीं पचा सके उसे स्त्री या गधी का दूध देवे। उन गायों के दूध में, जो सदा घरों के भीतर पाली तथा बाँध कर रक्खी जाती हैं विटेमिन डी० की मात्रा कम होती है। (मिसेज हेमन्स। 'सायंटीफिक अमेरीकन')

अमृतोपम धारोष्ण दूध—बाहर चरने वाली नीरोग गाय से शुद्ध पात्र में शुद्ध हाथों से दूध निकालना चाहिये। यह अत्यन्त गुणकारी होता है।

मांस वर्ग में—केकड़ा, घोंघा, कछुआ, खरगोश, बटेर, तितिर, सारङ्ग, हरियल, मोर, मुर्गा, बकरा, हरिण, गरई, वर्मी और रोहू मछली का मांस हितकर होता है।

अन्न वर्ग में - गेहूँ; रक्तशालि, साठी के चावल और मूंग, साबूदाना, आदि हितकर हैं। यथा—चरकने इन्हें एक वर्ष का पुराना होने पर देना लिखा है—

समातीतानी धान्यानि कल्प नीयानि शुष्यताम्।
लघूनिहीन वीर्याणि तानि पथ्य तमानि हि॥
(चरक चि० अ० ८ श्लो० १७६)

शाक वर्ग में—टोमाटो, प्याज१, परवल, पेठा, लौकी और सोहजन२ की फली दे।

फल वर्ग में—नारङ्गी, मोसमी, ताजे अङ्गोर, द्राक्षा, पाती नीम्बू और आँवला दे।

अण्डा वर्ग में—मुर्गा, हंस, चकोर, मोर और गौचिड़ा का अण्डा दे। जैसाकि कहा है—

धार्त्तराष्ट्र चकोराणां दक्षाणां शिखिनामपि।
चटका नाञ्च यानि स्युरण्डाणि च हितानि च॥
रेतः क्षीणेषु कासेषु हृद्रोगेषु क्षयेषु च।

(चरक सू० अ० २७ श्लो० ८३-८४)

उपरोक्त अण्डे रेतः क्षीण, क्षत क्षीण, हृद्रोग और कास में लाभकारी तथा मधुर अविपाकी और शीघ्र बल वर्द्धक हैं।

नोट—क्षय रोगी को दिनभर में ऽ१॥ अच्छा दूध और दो अण्डों की जरदी लेनी नित्तान्त आवश्यक है।

बृंहण यूष— कछुए का मांस १ छटांक
बकरे का यकृत् १ छटांक
पीपल का चूर्ण दो आना भर
छोटी इलायची का चूर्ण ।) भर, गोघृत २ तोला।

---

१ इसके गुण को सुश्रुत० सू० अ० ४६ शाक वर्ग में तथा चरक० सू० अ० २७ श्लोक १६६ में देखें।

२ इसका गुण 'योग रत्नाकर' में पढ़ें।

इन सबको ३२ सेर जल में मन्द मन्द आग से पकाकर २ छटांक यूष बनाले और गुनगुना रहे तो पान करावे। चिकित्सक रोगी की अवस्था के अनुसार इसकी मात्रा बढ़ा घटाकर प्रयोग करा सकते हैं और सम्भव हो तो गोघृत की जगह बकरीका घी इस यूप में डालें। इसके पीने से यकृत् की क्रिया ठीक होती है और रक्ताल्पता दूर होकर शरीर का भार बढ़ता तथा ज्वर कम होता है। अर्क प्रकाश में बकरे के हृदय और बकरी के दूध का अर्क, सितोपलादि चूर्ण का अर्क क्षयरोग में देना लिखा है। यथा—

प्र० यो० अजस्य हृदयार्कस्तु तन्मातृदुग्ध साधितः।
द्वि० यो० उर्ध्वमूर्ध्वं द्विगुणिता स्त्वगेला पिप्पलीतुगाः॥
सितोपलार्कः सक्षौद्रः सघृतो राजयक्ष्मनुत्॥

शरीर को पुष्ट करने वाले पदार्थों में मांस प्रमुख है। जैसाकि कहा है—

"शरीर बृंहणे नान्यत् दार्ढ्यं मांसाद्वि शिष्यते"

(चरक० सू० अ० २७ श्लो० ८५)

इसीलिये कहा है कि—

मांसेनो पचिताङ्गानां मांसं मांस करं परम्।
तीक्ष्णोष्णो लाघवाच्छस्तं विशेषान्मृग पक्षिणाम्॥
शोषिणो वर्हिणं दद्याद्वर्हि शब्देन चोरगान्॥

(चरक)

मांस से परिपुष्ट मांसाहारी जीवों का मांस, मांस को अच्छी प्रकार बढ़ाता है। यक्ष्मा में मृग और पक्षियों का मांस तीक्ष्ण, उष्ण और लघु होने से विशेष हितकारी है। क्षय रोगी को मोर का मांस, या मोर नाम से गिद्ध, घूग्घू, मुर्गा और नीलकण्ठ आदि पक्षियों का मांस विधिवत् बनाकर दे। तित्तिर के नाम से कौवे का मांस, और वर्मि मत्स्य के नाम से सर्प का मांस दे। औरभी कहा है—

एते सिंहादिभिः सर्वे समाना वायसादयः।
रस वीर्य विपाकेषु विशेषाच्छोषिणे हिताः॥ (चरक)

सिंह, बाघ, भेड़िया, भालू, बिल्ली और सियार आदि मांसाहारी जन्तुओं की तरह कौवे, चिल्ल और बाज रस वीर्य एवं विपाक में गुणकारी होते हैं तथा शोष रोगी के लिये विशेष हितकर हैं। इनके अतिरिक्त केकड़ा, कछुआ, और बकरा भी प्रशस्त गुणकारी है। जैसाकि—कोषस्थानां मध्ये—

कृष्ण कर्कटक स्तेषां वल्यः कोष्णोऽनिलापह :।
शुक्लः सन्धानकृत्सृष्ट विण्मूत्रोऽनिलपित्त हाः॥
(सुश्रुत० सू० अ० ४६)

कोषस्थ जन्तुओं में काला केकड़ा बलकारी, ईषदुष्ण और वायुविकार नाशक है। सपेद केकड़ा जोड़नेवाला, वायु पित्त विकार और मल मूत्र को साफ करने वाला है।

कछुए का मांस बलकारक, वायुनाशक, शुक्रवर्द्धक, नेत्र हितकारक मेधा और स्मृतिवर्द्धक तथा यक्ष्मा नाशक है।

यथा— वल्यो बात हरो वृष्यश्चक्षुष्यो बलवर्द्धनः।
मेधा स्मृति करः पथ्यः शोषघ्नः कूर्मउच्यते॥ (चरक)

बकरे का मांस न तो अधिक शीतल न भारी एवं न अधिक स्निग्ध होता है अतः त्रिदोषघ्न है। अभिष्यन्दी (स्रोतों में रुकावट करने वाला) नहीं हैं। मनुष्य शरीर और धातु के अनुकूल होने से परम पुष्टिकारी है। यथा—

नाति शीत गुरु स्निग्धं मांसमाजमदोषलम्।
शरीर धातु सामान्या दनभिष्यन्दि वृंहणम्॥ (चरक)

नोट १—सर्पादिकों का मांस गुप्त रीति से विधिवत् स्वादु बना कर एवं युक्ति पूर्वक प्रशंसादि से सुरुचि उत्पन्न कराने के बाद रोगी को खाने के लिये दे क्योंकि अनभ्यास के कारण भेद जानने पर रोगी खाने से इनकार और घृणा करेगा या खाये हुए आहार को वमन कर देगा। इसलिये इस रहस्य को सर्वथा गुप्त रक्खा जाता है। जो किसी तरह भी मांस नहीं आत्मसात् कर सकते उन्हें औषधि सिद्ध घी, दूध का सेवन कराया जा सकता है।

नोट २—सांप, मछली जाति का ही एक जन्तु है, इसमें चर्बी अधिक होती है। व्रण और नाड़ी व्रण (Sinus) पर इसकी सफल प्रतिक्रिया प्रसिद्ध है इसलिये अन्तः व्रणीय यक्ष्मा रोगी को सांप का मांस बहुत लाभ करता है। सांप का सिर और पूँछ काठकर फेंक

दिये जाते हैं, बाद में घड़ को बन्द मुंह पात्र में काफी जल के साथ पकाया जाता है और सम्यक् सिद्ध होने पर पात्र से निकाल कर बीचों-बीच फाड़कर कांटे बाहर कर टुकड़ा-टुकड़ा बना मक्खन वा घी में तल-कर सुपथ्य बना लिया जाता है। यक्ष्मा रोग में मांस का प्रयोग अनिवार्यरूप से करना चाहिये, क्योंकि दैहिक पुष्टि होना इसके विना असम्भव-सा है। जैसा कि शारीरिक रचना बतलाती है। यथा—

अर्द्धञ्च प्रायेण शरीर भारस्य निष्पाद्यते पेशीभिरेव।
शारीर बलं च पेशी निष्ठं भूम्ना। (प्रत्यक्ष शारीरम्)

समस्त द्रव्यों की वृद्धि समान द्रव्य के संयोग से होती है अतः क्षयरोगी की आहार राशि में उन द्रव्यों का होना नितान्त आवश्यक है जिनकी शरीर में कमी हो गई हो। आयुर्वेद में इसी अटल सिद्धान्त पर सर्वदा चिकित्सा होती आयी है। यथा—

सर्वदा सर्व भावानां सामान्यं वृद्धि कारणम्। (चरक)

तथाच [क] सं ते मज्ज्ञा मज्ज्ञा भवतु, समुते परुषा परुः।
सं ते मांसस्य विस्त्रस्तं समथ्यमपिरोहतु ॥

[ख] मज्ज्ञा मज्ज्ञा संधीयतां चर्मणा चर्म रोहतु।
असृक्ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ॥

(अथर्ववेद—का० ४ अ० ३ सू० १२)

[क] हे पुरुष ! तेरी मज्जा की धातु मज्जा के साथ मिलकर बढ़े, पोरु से पोरु मिलकर अच्छा हो जाय और विनाश प्राप्त मांस का भाग भी उचित रीति से ठीक हो जाय एवं टूटी हुई हड्डी भी हो तो वह भी ठीक ठीक मिल कर जुड़ जावे।

[ख] मज्जा धातु के साथ मज्जा को चर्म से चर्म को मिला दिया जाय तो क्षत शीघ्र ही भर आना सम्भव है। इसी प्रकार रुधिर भी, रुधिर की प्रणालियों के जोड़ मिला देने से जुड़ जाती हैं और हड्डी को हड्डी से मिला मिला दें तो जुड़कर ठीक हो जाती हैं। इसी प्रकार मांस मांस के साथ मिला देने पर वह भी मिलकर एक हो, पुष्ट हो जाता है।

नोट— घन, अच्छ और अच्छतर ये मांस पाक के तीन प्रकार हैं। अवस्था के अनुसार मांस पाक की व्यवस्था करनी चाहिये।

मसालों को उचित मात्रा से ले और मोटा-मोटा पीस कर पोटलीबद्ध परिपाक के समय छोड़े और सिद्ध होने पर उसे निकाल डाले। जो कट्टर निरामिषाहारी हैं उनको जौ, गेहूं का आंटा दूध में सिद्ध कर घृत मिश्रित देना अच्छा है। सत्तू में घी, मधु और मिश्री मिलाकर भी दिया जाता है। यथा—

यव गोधूम चूर्णं वा क्षीर सिद्धं घृतप्लुतम्।

सक्तून् वा सर्पिषा क्षौद्र सिताकान् क्षयशान्तये ॥

(चरक)

उपर्युक्त आटे का प्रयोज्यरूप "पावरोटी या डबलरोटी" भी क्षयरोग में देना अच्छा है और यह आयुर्वेदोक्त एवं भारतीय खाद्य है।

कतिपय महानुभावों को इसके नाम मात्र से ही विदेशी गन्ध की घृणा के साथ-साथ विस्मय विन्यास होता होगा कि भला यह "पावरोटी" आयुर्वेद में कहाँ और किस रूप में है ? नहीं, यह बात विल्कुल आयुर्वेद की है और यह कोरी स्वदेशी चीज़ हैं। इसके संस्कृत नाम—कान्दव, कान्दवीक और कन्दुपक्व हैं और यही कान्दव ही 'पावरोटी' हैं।

इसका वर्णन इसप्रकार कवि कालिदासकृत 'मालविकाग्नि-मित्रम्' नामक प्राचीन नाटक ग्रन्थ में समुपलब्ध होता है। एक स्थल पर विदूषक अपनी भाषा में कहता है कि—

'विपणे कन्दुवित मे उदराभ्यन्तरं दज्झइ'

अर्थात्— विपणि कन्दुरिव उदरं मे दह्यते। यानी बाजार के कन्दुयन्त्र की नाईं मेरा उदर जल रहा है। कवि कालीदास के इस स्पष्ट वाक्य से मालूम होता है कि उस समयमें पावरोटी बनाने और बाजार में बिक्री करने की प्रथा पूर्ण रूपेण भारत में प्रचलित थी। यही कारण है कि इसका सन्दर्भ उक्त काव्य में पाया जाता है। आगे चलकर आप देखें कूर्म पुराण में इसके

खाने का विधान कितना स्पष्ट शब्दों में वर्णित है। यथा—

कन्दु पक्वानि तैलेन पयसा दधि सक्तवः।

द्विजै रेतानि भोज्यानि शूद्रगेह कृतान्यपि॥

अर्थात्—कूर्म पुराण का यह आदेश है कि कन्दुपक्व (पावरोटी) तैलपक्व और दूधपक्व भोज्य को दधि एवं सक्तु को शूद्र के घर का होने पर भी द्विज खा सकते हैं।

तथाच 'हारीते"—

कन्दुपक्वं१ स्नेह पक्वं पयसा दधि सक्तवः

एतानि शूद्रान्न भुजो भोज्यानि मनुर ब्रवीत॥

पाठक! आगे भगवान् मनु की दूसरी सम्मति देखें जैसा कि "कान्दवशाला (पावरोटी की भट्ठी का स्थान)" की शुद्धि विषय में लिखा है—

गोकुले कन्दुशालायां२ तैलयन्त्रेक्षुयन्त्रवोः।

---

१ आरनालं तथा क्षीरं कन्दुकं दधि सक्तवः।

स्नेह पक्वं च तक्रं च शूद्र स्यापिन दुष्यति॥

(अत्रिस्मृतिः श्लोक २४७)

२ गोकुले कन्दुशालायां तैल चक्रेक्षुयन्त्रयोः।

अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीणांच व्याधि तस्यच॥

(अत्रिस्मृतिः श्लो० १८६)

तथाच—अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रोभिराचरितानि च।

गोकुले कन्दुशालायं तैल यन्त्रेक्षुभन्त्रयोः॥

(अत्रिस्मृनि श्लोक २३८)

अमीमांस्यान्यचिन्त्यानि स्त्रीपुवालातुरेषु च ॥

(शुद्धिस्तत्र ति)

अर्थात् – गोशाला, कन्दुशाला, कोल्हु, ईख का कल, स्त्री बालक और रोगी सदा शुद्ध है। इनकी शुद्धता में तर्क वितर्क न करे ये सर्वदा स्वतः शुद्ध हैं।

वर्तमान युग में भारत का शिक्षित समाज किसी भी बात की सत्यता तबतक स्वीकार नहीं करता जबतक उसपर पश्चिमीय मुहर न पड़ जाय, किन्तु मेरे पाठक सर्वमान्य 'चरक-संहिता'की ओर दृष्टिपातकर मेरे कथनमें सत्यता की मात्रा का स्वतः अनुभव करें। चिकित्सक चूड़ामणि चरकर्षि अपनी संहिता के स्नेह स्वेदाध्याय में स्वेदन कार्य सम्पादक यन्त्र की रचना के विषय में लिखते हैं कि—"द्वि पुरुष प्रमाणं मृण्मयं कन्दु संस्थानम्" अर्थात् कन्दुसंस्थान (पावरोटी की भट्ठी) की तरह दो पुरुष के बराबर लम्बा मिट्टी का यन्त्र स्वेदनार्थ निर्मित करना चाहिये।

अब आपको "कन्दुसंस्थान' चरक संहिता में मिलने से विशेषतया विदित हो गया होगा कि पावरोटी और उसके निर्मापक यन्त्र से भारत की सर्वसाधारण जनता अवगत थी। वैद्यगण पावरोटी की भट्ठी तुल्य यन्त्र से स्वेदन कार्य सम्पादन करते थे। आजकल यही कन्दुयन्त्र पावरोटी बनाने के काम में आता है।

अब आप इसके बनाने की विधि भी एक प्राचीन प्राणाचार्य के स्वर्णाक्षरों में देखें। यथा—

वारिणा कोमलां कृत्वा समितां लवणान्विताम्।
विनीय सन्धानं कश्चित् स्थापयेद्भाजनेनवे ॥
चण्डातपे तावद्रक्षेद्याव दम्लत्वमाप्नुयात्।
उद्धृत्यच पुनः पश्चात्सन्नयेत् दृढ पाणिना ॥
ततोऽपूपाकृतीन् कुर्यात् स्वजमूतिच्छया तथा।
भूर्यङ्गारे प्रतप्ते तु कन्दुगर्भे निवेश्यच ॥
पङ्केन रन्ध्रमालिप्य स्वेदयत्तान् यथाविधि।
अनेन विधिना सिद्धिं कान्दवं कथितं बुधैः ॥
कान्दवं बलकृद् वृष्यं त्रिषुदोषेषु पूजितम्।
सद्यो रुचिकरं हृद्यं शीघ्र मिन्द्रिय तर्पणम् ॥
दुग्धैः मांसरसैर्वापि कान्दवं भक्षयेन्नरः।
श्वास कास ज्वर छर्दि मेह कुष्ठ क्षयापहम् ॥

"इति वृन्द निघण्टौ द्रव्य विज्ञानीये काण्डे"

यक्ष्मारोगी के आहार द्रव्यों के मूलतत्वों की तालिका।

खाद्य पदार्थ ½ छटाँकमें	कार्बोज माशे	प्रोटीन माशे	वसा माशे	कितनी उष्णता प्राप्य होती है।
पूरे आटे की (भूरी) डबल रोटी	१३	१·२५	०·२५	६०
[illegible]ो	१	०·२५	×	५
आटा	२०	३	०·५	६६
शलजम	२	०·२५	×	६
पालक	१	०·५	×	६
चावल	२२	२	×	
मूली	१·५	०·२५	×	७
मीठा कद्दू (लौकी)	१·५	०·२५	×	७
आलू बुखारा सूखा	२०	०·५	×	८२
पनीर	१	७	६	११३
आलू (कच्चा)	५	०·५	×	२२
नारङ्गी (शंत्रा)	३	०·२५	×	१३
प्याज	३	०·२५	×	१३
नींबू	२	०·२५	०·२५	११
अंगूर	५	०·२५	०·२५	२३

खाद्य पदार्थ ½ छटाँकमें	कार्बोज (श्वेत-सार) माशे	प्रोटीन माशे	वसा माशे	कितनी उष्णता प्राप्य होती है
अञ्जीर सूखे	१६	१	×	८०
खजूर सूखे	२०	०·५	०·७५	८८
फूल गोभी	१·५	०·२५	×	७
गाजर	३	०·२५	×	१३
बन्द गोभी	१·५	०·२५	×	७
१ छटाँक अनार बेदाना	४·३८	०·६०	सूक्ष्म	२०
जर्दआलू	३	०·२५	×	१३
केला	६	०·२५	×	२५
दूध	१·२५	१	१	१६
अण्डा	×	४	३	४३
बकरे का गोश्त (टाँग)	×	५	५	६५
मुर्गा	×	५	४	५६
माखन	—	—	२३	२०७
मलाई	१	०·५	५	५१

आहार द्रव्य	प्रोटीन	वसा	कार्वोज	खनिज पदार्थ	जल
गेहूं	११·४७	२·०४	७०·९०	३·१४	११·८३
मूँग	२३·६२	२·६६	५३·४५	३-४%	१०-११% शेष भाग काष्ठोज
चावल	६·६२	०·५०	८१·०७	१·०४	११·०५
टोमाटो	१·३	०·२	५·०	०·७	९१·९
प्याज	१·६	०·३	१०·१	०·६	८७·६
केला	१·३	०·६	२२·०	०·८	७५·३
बैंगन	०·८९	०·९४	३·४८	०·२६	९०·९८
नारङ्गी	०·९	०·६	८·७	लवण अम्ल } २·०	८६·७
नीम्बू	१·५	०·९	८·३	लवण अम्ल } ०·५	८९·३

आहार द्रव्य	प्रोटीन	वसा	कार्बोज	खनिज पदार्थ	जल
अंजीर (ताजे)	१·५	× ×	१८.८	लवण, अम्ल } ०·६	७९ १
मुनक्का	१·२	३·०	६४·०	लवण, अम्ल } २·२	२७·६

आहार द्रव्य	प्रोटीन	वसा	शर्करा	लवण	जल
बकरे का मांस	१८·०	५·०	× ×	१·०	७६·०
हिरन का मांस	१९·७	१·९	× ×	१·१	७५·७
खरगोश का मांस	२२·३	१·१	× ×	१.१	७४·०
मुर्गी का मांस	२२·७	४·१	१·३	१·१	७०·४
खोल सहित अंडा	१३·५०	११·६०	× ×	१·२०	७३·५०
अंडे का श्वेत भाग	१२·८७	०·२५	× ×	०·६३	८५·५०

आहार द्रव्य	प्रोटीन	वसा	शर्करा	लवण	जल
अंडे का पीला भाग	१६·१२	३१·३९	× ×	१·०१	५१·०३
माखन	२·००	८५·००	× ×	१·००	१२·९५%
घृत	× ×	१००% लगभग	× ×	× ×	× ×
दही	२४·०६%	२·५	× ×	१·१	शेष जल
बकरी के दूध	४·३	४·७८	४·४६	० ७५	८५·७१
गाय के दूध में	३·५	४·०	३·५	०·७५	८७·२५
गधी के दूध में	२·२५	१·६५	६·००	०·५०	८९·६०
भारतीय स्त्रियों के दूध में प्रायः	१·२	२·८०	५·९०	०·२४	८९·८६

आहार द्रव्य	प्रोटीन	वसा	कार्बोज	काष्ठोज	खनिज पदार्थ	जल
चोकर सहित डबल रोटी में	६·३	१·२	४४·८	१·५	१·२	४५·०
चोकर रहित डबल रोटी में	६·५	१·०	५१·२	०·३	१·०	४०·०
केले के आटे में	४%	०·५%	८० ०%	——	२·५%	१·३०%
अनार में	१·५	१·६	१६·७	——	लवण अम्ल } ०·६	७६·८

उपर्युक्त तालिका 'हमारे शरीर की रचना' नामक ग्रन्थ से लीगई है ।
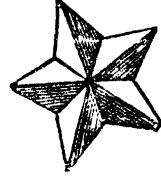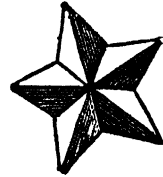
प्रोटीनः— क्षय रोगियों को साधारण परिमाण से अधिक मिलना चाहिये। यह सेलों के बनाने के लिये बहुत आवश्यक है और इसीसे मांस भी बनता है।

यह चना, मूंग, मसूर और उड़द की दाल, मांस, अंडा (श्वेत भाग) तथा दूध में अधिक पाया जाता है। मछली, मटर, लाभिया और अखरोट में भी पाया जाता है।

वसा— यह परिश्रम जन्य क्षय को दूर करती है। शरीर में शक्ति उत्पन्न करती है तथा शीत ऋतु में उष्णता की रक्षा करती है।

यह—मक्खन, घी, तेल, बादाम, पिस्ता, मलाई, अंडा (पीला भाग) और चिलगोज़ा में पाई जाती है।

खटिक तत्व (Calcium)— इससे अस्थियां सबल और दृढ़ होती हैं। रक्त में उष्णता रखना और शरीर की पुष्टि करना इसका महत्व पूर्ण कार्य है।

यह— सीप के मांस, घोंघा के मांस और कछुआ के मांस, वंश-लोचन, मोती, दूध, दही, पेठा, लौकी, वराटिका, शुक्ति और मृग-शृङ्ग में प्रचुरता से पाया जाता है।

यक्ष्मा में उपयोगिता की दृष्टि से खाद्योज (Vitamine) का वर्णन ।

भोजन में खाद्योज—ए, बी, सी, डी, ई प्रभृति का रहना स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है । भोजन में इनके न होने या कम होने पर स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है और शरीर रोग-क्षम नहीं रहता है ।

[ए] यह कीटाणु अन्यबाधा से बचने और शरीर वृद्धि के लिये आवश्यक है । यह नेत्र और फेफड़ों के रोगों के लिये विशेष लाभदायक है । अंगों की रचना में इसकी अधिक आवश्यकता होती है ।

यह कौड मछली के यकृत्, अंडे की ज़रदी, मक्खन, जानवरों के यकृत्, वृक्क, हृदय और बकरे की चर्बी, गाजर, टोमाटो और बिनछाने गेहूँ के आटे में पाया जाता है ।

तरुण और प्रौढ़ावस्था में भोजन के साथ इसकी कमी होने पर श्वासपथ के रोगों के होने की अधिक सम्भावना रहती है ।

[बी] यह शरीर के अन्दर सभी अङ्गों की भलीभाँति पुष्टि करता है, मस्तिष्क, मांस पेशियों, हृदय एवं पट्ठों को विशेष लाभ करता है । यह नाड़ी संस्थान के पोषण

के लिये आवश्यक है। नाड़ी प्रदाह और बेरी बेरी रोग से बचाता है। पेट के रोगों को दूर करता है।

यह चावल के उपरी स्तर और भ्रूण में, गेहूँ के भ्रूण, पूरे गेहूँ का आटा से बने पदार्थ, मूंग, मसूर आदि की दाल, अंडे की ज़रदी, यकृत्, हृदय, मस्तिष्क, वृक्क, कन्दशाक, प्याज, प्राकृतिक दुग्ध और खमीर में पाया जाता है।

नोट—Vitamine (खाद्योज) को कुछ लोगोंने संजीवनी-शक्ति और प्राणशक्ति शब्द से व्यवहृत किया है।

नोट २—कल छाँटे चावल में यह नहीं पाया जाता है।

[सी] यह रक्त शुद्ध करता है। हड्डियों एवं दाँतों के निर्माण में सहायक हो उन्हें पुष्ट करता है। दाँत के रोग में, कमज़ोर बच्चोंके लिये और रक्त की खराबियों में विशेष लाभ पहुँचाता है। अन्तड़ियों को भी स्वच्छ रखता है। रक्तस्राव की बीमारियों से बचाता है, शरीर में दर्द नहीं होने देता तथा दाँत के मसूड़ों को मज़बूत बनाता है।

यह—नारङ्गी, (शंत्रा), मोसमी, नीम्बू, अंगूर, टोमाटो, कच्ची हरी तरकारियां, गाजर, बिनाउबाला दूध, शलजम, अङ्कुरित चने और बहुत से ताजे फलों में पाया जाता है। बिना नमक छोड़े थोड़ी देरतक पकाई हुई हरीतरकारियों में पाया जाता है। कागजी नीम्बू में यह बड़ी मात्रा में पाया जाता है।

[डी] यह रक्त एवं मांस पेशियों को शक्ति प्रदान करता है। पोटैशियम, कैलसियम और स्फुर तत्व का आत्मिकरण भलीभाँति करता है। अस्थियों को मजबूत और दाँतों को दृढ़ रखता है तथा शरीर के ढाँचे को सुन्दर रूप से निर्माण करने में सहायता पहुँचाता है। शरीर में यह सूर्य की एक विशेष किरण (Ultra violet rays) के द्वारा बनता है। जिन वस्तुओं में खाद्योज ए पाया जाता है उन्हीं में यह भी पाया जाता है।

[ई] जनन शक्ति के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है और प्रत्येक स्त्री पुरुष में इसका उचित मात्रा में रहना आवश्यक है अन्यथा जनन शक्ति क्षीण हो जाती है। गेहूँ के भ्रूण में यह खाद्योज रहता है।

नोट— इनके अलावे और खाद्योज जैसे बी १, बी २, बी ३, एफ, जी आदि आविष्कृत हुए हैं; किन्तु उपर्युक्त पाँच प्रधान हैं।

नोट २—ए खाद्योज शतांश की उष्णता (जो जल उबलनेका ताप होता है) को सह सकता है। जिन वस्तुओं में यह रहता है यदि वे चीजें शतांश ताप से अधिक ताप पर पकाई जायं तो यह खाद्योज नष्ट हो जाता है। सी खाद्योज भी शतांश की उष्णता को सह सकता है किन्तु बी खाद्योज १२० शतांश की उष्णता को भी सह सकता है।

खाद्योज की दृष्टि से कुछ भारतीय फल एवं शाकों की विशेषता—

नारङ्गी—इसमें विटामीन (खाद्योज) 'सी' अधिक मात्रा में है और 'ए' और 'बी' भी यथेष्ट अंशों में पाये जाते हैं। फल की प्रकृति उष्ण और मधुर होती है।

नीबू—इसमें खाद्योज 'सी' अधिक है और 'बी' भी काफी मात्रा में है। इसका रस अग्निदीपक, लघु और पाचक है। इसमें यक्ष्मा, आमवात, हैजा आदि रोगनाशक शक्ति है।

गाजर—इसमें खाद्योज 'ए' अधिक अंशों में है; किन्तु 'बी' और 'सी' भी यथेष्ट हैं। इसमें फास्फोरस (स्फुर) भी पाया जाता है, जो कि शरीर की अग्नि को उत्पन्न करता है एवं लघु और स्वास्थ्यवर्द्धक है। गाजर में कैरोटीन (Carotene) बहुत रहता है और यहभी खाद्योज 'ए' का काम करता है। अङ्गरेजी में गाजर को कैरोट (Carrot) कहते हैं।

सेव, नाशपाती—दोनों फलों में खाद्योज 'बी' और 'सी' सामान्य मात्रा में है। सेव में 'ए' भी यथेष्ट है। ये मधुर एवं शीत वीर्य हैं। इनको बिना छीले खाना चाहिये और खाने के समय ही काटना चाहिये। सेव में सञ्चित मल शोधन की

विशेष शक्ति है। इसे अङ्गरेजी में King of Fruits (फलराज) कहते हैं।

आम—इसमें खाद्योज 'ए' अधिक मात्रा में है। यह उष्ण वीर्य है। शरीर में कान्ति उत्पन्न करता है एवं थकावट को दूर करता है। यह दूध के साथ शीघ्र पचता है और स्वास्थ्य-वर्द्धक भी होता है।

पपीता—इसमें खाद्योज 'ए' और 'सी' पूर्ण रूप से है। पाक में लघु, पाचक एवं शीत है। नेत्रों को ठण्ढक पहुंचाता है और उदर रोग में विशेष उपकारी है।

केला—इसमें खाद्योज 'ई' अधिक मात्रा में पाया जाता है और सामान्यतः सभी खाद्योज पाये जाते हैं।

अंगूर—इसमें सामान्यतः 'ए', 'बी' और 'सी' तीनों ही खाद्योज पाये जाते हैं। शीत वीर्य, नेत्र हितकारी, वृंहण एवं ज्वरघ्न है।

अमरूद—इसमें खाद्योज 'सी' है। शीतवीर्य, रक्तशोधक, वुभुक्षा वर्द्धक और पौष्टिक है। इसका बीज कठोर और अपचनशील हैं।

खीरा, ककड़ी—इनमें सामान्यतः खाद्योज 'ए' 'सी' के अतिरिक्त फास्फोरस एवं लोहा यथेष्ट मात्रा में है। खीरा शीत और लघु होता है। ककड़ी उष्ण और गुरु होती है।

आलू—इसमें प्रोटीन्स, कार्बोज और खाद्योज 'ए', 'बी',

'सी' सामान्य अंशों में पाया जाता है। इसको उबाल कर खाना पुष्टिकारक और स्वास्थ्य वर्द्धक है।

गोभी—इसमें खाद्योज 'ए' 'बी' और 'सी' तीनों ही अधिक मात्रा में पाये जाते हैं; फूलगोभी से पत्तागोभी अधिक लाभदायक हैं, इसमें फास्फोरस भी पर्याप्त अंशों में है। यह शीत, पाचक और स्वास्थ्य वर्द्धक होती है।

टोमाटो—इसमें खाद्योज 'बी' और 'सी' अधिक तथा 'ए' भी यथेष्ट रूप से है। खनिज पदार्थ पर्याप्त अंशों में हैं। इसके स्वरस को चीनी या नमक के साथ पीना चाहिये। इसे अधिक न उबाले, उबलते जल में २-३ मिनट डालकर निकाले और चटनी बनाकर खाय।

मूली, शलजम—इनमें खाद्योज 'बी' के अतिरिक्त फास्फोरस और लोहा यथेष्ट अंशों में हैं। शलजम में खाद्योज 'ए' और 'सी' भी सामान्य मात्रा में पाया जाता है। इसके सेवन से नेत्रों को विशेष लाभ होता है।

हरे चने-मटर—इनमें 'बी' खाद्योज और प्रोटीन्स समान्य अंशों में होते हैं। इसके अतिरिक्त हरे मटर में खाद्योज 'ए' और 'ई' भी पर्याप्त हैं। भिगोये हुए चने और मटर में जबकि अङ्कुर निकल आते हैं, खाद्योज 'सी' अधिक मात्रा में पाया जाता है।

हरी तरकारियां—इनमें सभी प्रकार के पत्र शाक—सोया,

मेथी, पालक, चौलाई, पुदीना, बथुआ चना आदि सम्मिलित हैं।

इनमें खाद्योज ए' और 'डी' अधिक मात्रा मे हैं। प्रोटीन्स की भी अधिकता होती है, एवं कार्बोहाइड्रेट्स भी सामान्य मात्रा में पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त खनिज पदार्थ—कैलसियम, पोटैसियम, आयोडीन भी यथेष्ट अंशों में होते हैं। पालक शाक में उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त फास्फोरस एवं खाद्योज 'सी' और 'ई' भी काफी मात्रा में होते हैं। ये सभी पत्रशाक लघु शीतल एवं पाचक होते हैं। इनको अधिक उबालने और मसालेदार बनाने से उपर्युक्त तत्व नष्ट हो जाते हैं। भाजी को धोकर, महीन काटकर लवण, मिर्च और सिरका डाल कर भली भाँति खाया जा सकता है। अधिक स्वादिष्ट एवं हितकर बनाने के लिये टोमाटो, प्याज और मूली के टुकड़े आदि डाले जा सकते हैं। इस विधि से स्वस्थ पुरुष हीं इन्हें खा सकते हैं जिनकी पाचक अग्नि ठीक है।

२४ घण्टों में आहार का एक उदाहरण।

—(:*:)—

हाथों के पीसे, बिन चाले गेहूं के आटे की बनी सादी रोटी

या पावरोटी	४ छटाँक
मांस	२ „
दूध	२४ „
घी	१ „

अण्डा—२-४ जितना पचा सके।

इसके अतिरिक्त भूख की इच्छा रहने पर यथेष्ट काल ताजे फलों को उचित मात्रा में खाय।

चिकित्सक को सावधानी से खटिक तत्व, वसा, प्रोटीन और खाद्योज युक्त आहार द्रव्यों की व्यवस्था रोगी के पथ्य में करनी चाहिये।

इसके लिये केकड़ा, घोंघा आदि का मांस, बकरे की गोड़ी, तरुणास्थियां, मुर्गी के अण्डे, बकरी का दूध, दही, घी, नारङ्गी, पके गुलर, पपीता प्रभृति उत्तम प्रयोज्य हैं।

भोजन करते समय रोगी के मन में ऐसी भावना होनी चाहिये कि मै प्रत्येक खाद्य से शरीर पोषक तत्व ग्रहण कर रहा हूं। जैसाकि निम्नलिखित वैदिक मन्त्र निर्देशकर रहा है—

पयस्वती रोषधयः पयस्व न्मामकं पयः ।
अपां पयसोयत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ॥
(अथर्ववेद – कां० १८ अ० ३ सू० ३)

हिन्दी—साँठी यव आदि औषध रूप अन्न हमारे लिये सारमय होवें और मेरे शरीर में जो सारभूत बल है वह भी सारवाला होवे तथा जलों के सार का भी जो सार है उस औषधि आदि के सार से जलाभिमानी देव मुझे शोभायुक्त करें ।

इसविधि से जो व्यक्ति सुपथ्य का सेवन करेगा, वह शीघ्र यक्ष्मा रोग से मुक्त होगा । जैसाकि—

अघ्नतो वैद्य सन्देशादेवं कुर्वन्नतन्द्रितः ।
राजयक्ष्म विकारात्स अचिरेण विमुच्यते ॥

औरभी—मनुष्य को मात्रा और काल विचारकर हितकारी आहार रूपी इंधन द्वारा जठराग्नि को चैतन्य रखना चाहिये । जैसाकि कहा है—

हिताभिर्जुहुयान्नित्यमन्तराग्निं समाहितः ।
अनुपान समिद्भि र्ना मात्रा कालौ विचारयन् ॥
(च० सू० अ० २७ श्लो० ३४०)
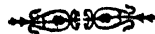
यक्ष्मा रोग में कर्तव्याकर्तव्य ।

चाय, कौफी, सोडा, लेमोनेड, बीड़ी, सिगरेट और तम्बाकू आदि बुरी वस्तुओं से बचना चाहिये। मद्य का अविधि सेवन सरसों, लाल मिर्चा, हींग और खटाई वगैरह मसाले, जुलाब (रेचक औषधि) वेग रोध, स्वेदन, अञ्जन, विषमभोजन, विरुद्ध-भोजन, रूक्ष भोजन, तरबूज, कुलथी, उड़द, सेम, ककड़ी आदि शाक, करेला, बाँस का कोंपर, पान, खार एवं विदाही द्रव्य अध्यशन (भोजन पर भोजन) रात्रि जागरण, शक्ति से बढ़कर परिश्रम, आदि का त्याग करना चाहिये।

अविवाहित क्षयरोगी को विवाह और विवाहित को स्त्री-सहवास करना मना है। एक कमरे में क्षयरोगी के साथ दूसरे व्यक्ति को सोना नहीं चाहिये।

जमीन पर इधर-उधर थूक नहीं फेंकना चाहिये, इसकेलिये थूकदानी का व्यवहार करे जिसमें जीवाणु नाशक औषधि रक्खी हो। शर्दी से बचने के लिये जाड़े में गर्म कपड़ों को पहनना चाहिये। इनबातों को प्राचीन आयुर्वेदज्ञोंने भी कहा है। यथा—

विरेचनं वेग विधारणानि श्रमं स्त्रियं स्वेदनमञ्जनञ्च।
प्रजागरं साहस कर्म सेवां रूक्षान्न पानं विषमाशनञ्च ॥

इत्यादि—। (पथ्यापथ्य विनिश्चये)

क्षयरोगी को लवणों में एक सैन्धव लवण ही रुचि उत्पादन मात्र के लिये अत्यल्प मात्रा में सेवन करना चाहिये। यथासम्भव इसके अभ्यास का परित्याग ही श्रेयस्कर है। जैसाकि 'चरक संहिता' के विमान स्थान अ० १ में कहा गया है और 'सुश्रुत' में भी लवण को रक्त दूषक एवं पाण्डु कारक कहा गया है। सुश्रुत उ० अ० ४४ श्लोक १।

इस लवण निषेध विषय का एलोपैथी में सर्व प्रथम "डाक्टर विलाड और जावाल" ने आयुर्वेद से अन्वेषण कर निर्देश किया है।

अन्तेतु—प्राणीमात्र अपने सुखकी इच्छासेहीं प्रेरित होकर सभी कर्मों को करते हैं, लेकिन अज्ञानी जन अपने अज्ञान के कारण सुख की इच्छा करते हुए कुमार्ग में प्रवृत्त होकर दुःख भोगते हैं और ज्ञानी जन अपनी सुबुद्धि के द्वारा सुमार्ग में प्रवृत्त होकर आनन्द करते हैं। जैसाकि कहा है—

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।
ज्ञाना ज्ञान विशेषात्तु मार्गा मार्ग प्रवृत्तयः॥

(चरक० सू० अ० २८ श्लोक ३६)

चिकित्सा प्रसङ्ग ।
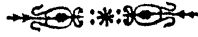
यक्ष्मा अति दारुण रोग है । जैसाकि कहा है—

अनेक रोगानुगतो बहुरोग पुरोगमः ।
दुर्विज्ञेयो दुर्निवारो शोषोव्याधिर्महा बलः ॥
(सुश्रुत-- उ० अ० ४१ श्लो० १)

'चरक' ने इस रोग की चिकित्सा के सिद्धान्त का संकेत सूत्र रूप से किया है । यथा—

सर्वस्त्रिदोषजो यक्ष्मा दोषाणान्तु बलाबलम् ।
परीक्ष्यावस्थिकं वैद्यः शोषिणं समुपाचरेत् ॥
(च० चि० अ० ८ श्लो० ५६)

हिन्दी— सब प्रकार के यक्ष्मा रोग त्रिदोषज होते हैं, इसलिये इस रोग में दोषों का बलाबल विचार कर वैद्य को यक्ष्मा वाले की चिकित्सा करनी चाहिये ।

इस संक्षेप कथन से प्रायः सभी चिकित्सकों को विशद विज्ञान नहीं हो सकता है; अतः पाठकों के सामने इस रोग की चिकित्सा की सुबोध विवेचना करता हूं ।

ताप परिमाण (Temperature) – मुख द्वारा प्रत्येक

स्वस्थ व्यक्ति का साधारण गात्र ताप (Normal temperature) ९८·४ होता है। स्वस्थ आदमी का दिन रात में इससे अधिक कभी नहीं बढ़ता है। प्रातःकाल सोकर उठते समय ताप परिमाण ९७·२ होना चाहिये। यदि प्रातःकाल इसके विपरीत ९८·४ हो तो यह साधारण गात्र ताप नहीं है प्रत्युत १ डिग्री ज्वर का सूचक है।

रोगी का ताप परिमाण देखने के लिये तापमापक यन्त्र (Thermomêtre) प्रातः ६-७ बजे, ६ बजे, १२ बजे, ४ बजे और रात के ६ बजे लगाना चाहिये और जो ताप हो उसे अङ्कित करले। जिस रोगी को ज्वर नहीं होता हो और चलता फिरता हो उसका प्रातः ७ से ९ बजे तक ताप परिमाण देखना, स्वच्छ गर्म जल में नवीन वस्त्र भिंगा कर निचोड़ ले और उससे रोगी के सभी अङ्गों को पोंछ डालना (Sponging) या स्नान कराना और निर्मल वस्त्र पहनाना चाहिये।

६ बज कर ३० मिनट से ६ बज कर ४० मिनट के बीच जलपान करावे और बाद में आध घण्टे तक विश्राम करने दे।

१० से १२ बजे तक ताप परिमाण के अनुसार खुली हवा में बैठे।

१२ बजे ताप परिमाण देखना, १२॥ में भोजन कर १ बजे तक विश्राम करना।

२ से ४ बजे तक अपराह्ण में गात्रताप के अनुकूल विश्राम या मनोरञ्जन।

४॥ बजे दूध और नारङ्गी का रस लेवे अथवा मनके अनुकूल पपीता आदि फल खावे। तत्पश्चात् शौचादि करे।

५॥ बजे साँझ को थोड़ा चलना फिरना या विश्राम करना चाहिये।

६ बजे साँझ में गात्र ताप देखना।

६ से ७ बजे तक विश्राम करना।

७॥ बजे सायंकालिक भोजन।

९ बजे से रात में शयन करे।

नोट—यह नियम उन क्षय रोगियों के लिये है, जिनका रोग उग्र न हो, पुराना हो और रोगी काम काज नहीं करता हो। अवस्थानुसार नियम परिवर्तन करना वैद्य के हाथ है। जैसे-जैसे स्वास्थ्य में सुधार होता जाय वैसे-वैसे विश्राम काल घटा कर कुछ मनोरञ्जन या टहलने का समय बढ़ाया जा सकता है किन्तु जिनका रोग कुपित हो, ज्वर होता हो उनके लिये विस्तर पर निरन्तर विश्राम (Rest) की अनिवार्य आवश्यकता है।

दूसरा नियम—यह उनके लिये है जो कुछ काम कर सकते हैं।

प्रातः सोकर उठने पर ताप परिमाण देखे बाद में ७॥-८ बजे में पूर्वोक्त अङ्ग प्रोञ्छन (Sponging) या सुखोष्ण जल से स्नान करे।

८॥ बजे जलपान और बाद में १५ मिनट आराम करने के बाद फिर काम में लगे।

काम से अवकाश लेकर १५-२० मिनट विश्राम करके १२॥ बजे भोजन करे और १॥ बजे तक विश्राम करे।

१॥ बजे के बाद काम में लगे और ४ बजे अवकाश लेकर खाद्योजयुक्त फलों को खाय।

६ बजे ताप परिमाण देखे और शौचादि से निवृत्त होकर उचित मात्रा में दुग्धादि पीये।

८ बजे सायंकालिक भोजन करे और कुछ मनोरञ्जन संगीतादि सुनकर ६ बजे सो जाय।

साधारण चिकित्सा—

विशुद्ध वायु सेवन, पौष्टिक आहार और विश्राम इस रोग की चिकित्सा की भित्ति है। इससे प्रतिकार शक्ति बढ़ती है और बेचैनी हटती है तथा भली भाँति निद्रा आती है।

सूर्य प्रकाश—हर प्रकार के यक्ष्मा रोग में सूर्य किरणें परम लाभकारी हैं; जैसाकि पहले लिख चुका हूं। प्रातः एवं सायंकालिक सूर्य किरणों के त्वचा पर पड़ने से शारीरिक शक्ति प्रबल होती है। वक्षःस्थल पर सामयिक वस्त्र धारण कर रोगी को सुबह शाम सह्यमत सूर्य किरणों को शरीर पर पड़ने देना चाहिये। सूर्यदेव प्राणों की रक्षा करने वाले हैं इनका अमित प्रभाव विश्व विदित हैं। जैसाकि वैदिक मन्त्र कहता है—

सूर्यस्त्वाधिपति र्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः ।

(अथर्व० का० ५ अ० ६ सू० ३१)

एक आधुनिक वैज्ञानिक ने भी इस बात का उल्लेख किया है। यथा—

"अपने शरीर को सूर्य से स्नान कराओ। सूर्य सर्वोपरि औषधि है। विज्ञान यह बतलाता है कि सूर्य से ही स्वास्थ्य मिलता है"। (गार्डनर रोनी)

विशेष चिकित्सा—

इस रोग में शरीर के भीतर प्रतियोगी पदार्थ उत्पन्न करके खास रोग प्रतिकार क्षमता को प्रवल किया जाता तथा जीवाणुओं का विनाश किया जाता है। इस कार्य के लिये निम्नलिखित औषधियों का प्रयोग किया जाता है।

यथा—पोषण के लिये विशेष कर कौड मछली का तेल (Cod liver oil) तथा खटिका वरण के लिये खटिक तत्व (Calcium) का प्रयोग किया जाता है।

जीवाणु नाश के लिये—

१—क्रियोजोट	२ ड्राम	(Creosote	2 Dr.)
२—टिञ्चर आयोडिन	२ „	(Tr. Iodi.	2 „)
३—कार्बोलिक एसिड	२ „	(Phenalis	2 „)
४—स्प्रिट इथरिस	२ „	(Spt. Etheris	2 „)

५—इक्युलिप्टस तेल २ ड्राम (Equliptus oil 2 Dr.)

६—तारपीन का तेल (देवदारु तैल) } २ ,, (Turpentine 2 ,,)

उपर्युक्त औषधियां सूंघने को दी जाती हैं। लहसुन का रस ३० बूँद से ६० बूँद तक खिलाया जाता है। इस रोग के जीवाणु तथा विष को विनाश करने की क्षमता विशेषतः स्वर्ण में पायी जाती है। इसी कारण पाश्चात्य चिकित्सकों ने स्वर्ण का कई प्रयोज्य (Preparation) बनाया है, जिनका वस्ति प्रयोग (Injection) किया जाता है।

सेनोक्राइसिन (Sanocrysin)—कुछ दिन पूर्व यह औषधि सबसे अधिक व्यवहार में आती थी। इसकी प्रथम मात्रा $\frac{१}{१००}$ ग्राम (Gram) से आरम्भ कर धीरे-धीरे $\frac{५}{१००}$ ग्राम तककी मात्रा बढ़ायी जाती है और इस दवा को समस्त राशि ५ ग्राम पर्यन्त दी जाती है। वस्ति प्रयोग सप्ताह में १ बार किया जाता है। पूर्वोक्त पूर्ण मात्रा की पूर्ति हो जाने पर यदि फिर इसकी आवश्यकता होती है तो तीन महीने के बाद फिर इसकी वस्ति दी जाती है। इसके लिये सूई (Needle) प्लैटिनम धातु की और सिरिञ्ज कांच की होनी चाहिये। वस्ति प्रयोग करने के बाद रोगी को २० घण्टे तक बिस्तरे पर लेटे रहना चाहिये।

इस दवा के वस्ति प्रयोग से प्रतिक्रिया पैदा होती है,

जिसमें वमन, विरेचन, ज्वर और त्वचा पर विस्फोट आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में दूसरा वस्ति प्रयोग उस समय करना चाहिये जब प्रतिक्रिया के लक्षण पूर्णतः नष्ट हो जायँ। वस्ति प्रयोग के पूर्व रोगी के मूत्र में ओजो धातु (Albumine) आने की परीक्षा कर लेनी चाहिये और आता हो तो वस्ति प्रयोग नहीं करना चाहिये।

निषेध— क्षयरोग की अन्तिम अवस्था, जिसमें फुस्फुस के भीतर बड़े बड़े विवर बन गये हों, क्षयरोग में अतिसार का उपद्रव हो, वृक्क विकार हो तथा अन्य आन्त्रिक विकार रहने पर इस दवा का प्रयोग नहीं किया जाता है।

दूसरा स्वर्ण का प्रयोज्य—सोलगनल बी ओलिएसम (Solganal B. Oleasum) की मांस वस्ति दी जाती है। इसकी प्रतिक्रिया मन्द होती है। सप्ताह में १ बार इसकी मात्रा का प्रयोग किया जाता है।

सोडियम मरूएट (Sadium morrhuate)—यह आरम्भिक क्षय, आन्त्रिक क्षय और ग्रन्थि क्षय में लाभ करता है। इसकी वस्ति सप्ताह में दो बार दी जाती है।

नोट—स्वर्ण जन्य उपद्रवों की शान्ति के लिये सोडियम थियोसलफेट (Sodium theosulphate) १० ग्रेन को १० c. c. परिस्रुत जल में स्वच्छ विलयन (Solution) तैयार कर सिरावस्ति दी जाती है।

एएटी कौक बैसिलस (A. K. B.)—यक्ष्मा जीवाणु (T. B.) विनाश के लिये इसकी वस्ति (Injection) दी जाती है।

नोट—उपरोक्त दवाइयां विदेशी कम्पनियों से इस देश में आती हैं।

कैलसियम क्लोराइड (Calcium Choride)—इसकी मात्रा खाने के लिये ४ से १५ ग्रेन। वस्ति देने के लिये आधा से १ ग्रेन। कैलसियम क्लोराइड सोल्यूशन के १ सी० सी० (c. c.) द्रव में १ ग्रेन औषध का भाग रहता है। इसकी अन्तस्त्वक् वस्ति देनी चाहिये।

क्रियोजोट (Creosote)—इसके सोल्यूशन को क्रियोजोट इन आयल कहते हैं। इसकी मात्रा ५ से १० बूँद तक की है। एक बार वस्ति देने के बाद जब प्रदाह शान्त होजाय तब फिर दुबारा वस्ति देना चाहिये। अधिकतर लेटिसिमस-डोरसी (Latisimus dorsi) और ग्लूटिअस (Gluteus) पेशी में इसको वस्ति दी जाती है।

यूकालिप्टोल (Eucaliptpol)—यह पचन निवारक और ज्वरघ्न है। यक्ष्मा रोग में प्रतिदिन एक बार इसकी वस्ति देने से ज्वर का वेग शनैः शनैः कम होकर यक्ष्मा का रोगी आरोग्य हो जाता है। विशुद्ध ओलिव आयल ४ भागमें एक भाग औषधि का मिलाकर द्रव बना लिया जाता है। इसके १५ बूँद द्रव को अन्तस्त्वक् में वस्ति दी जाती है।

ट्यूबर्कुलिन (Tuberculin) द्वारा चिकित्सा के विषय में आजकल के डाक्टरों का मत है कि इससे कुछ फायदा नहीं होता है।

शल्य चिकित्सा।

पाश्चात्य मतानुसार आजकल इस रोग में शल्य चिकित्सा भी कई पद्धतियों से की जाती है। जिसका निर्देश संक्षेप में करता हूं।

१—थोरेकोप्लेस्टी (Thoracoplasty)—

[क] विकृत फुस्फुसकी ओरकी प्रथम पर्शुकाके दोनों प्रान्त भाग के कुछ अंश को काटकर हटा दिया जाता है।

[ख] फुस्फुस के विकृत स्थान के ऊपर की पर्शुका के दोनों प्रान्त भाग के कुछ अंश को काट कर हटा दिया जाता है।

२—वक्ष उदर मध्यस्था नाड़ी (फ्रेनिकनर्भ) को काट कर उसके फुस्फुस गत अंश को बाहर खींच लिया जाता है (Phrenic Nerve Evulsion = Exairesis)।

३—फुस्फुसावरण में हवा भर देना (Artificial Pneumothorax)।

इनके अतिरिक्त एक और चिकित्सा है जिसमें जीवाणु-नाशक औषधि को एक विशेष प्रकार की सुई द्वारा फुस्फुस के

विकृत भाग में वस्ति प्रयोग द्वारा पहुंचाते हैं। यह विधि 'सर जेम्स रावर्ट' की आविष्कृत है।

अब आप आयुर्वेदीय चिकित्सा की ओर दृष्टिपात करें—कहना नहीं होगा कि खटिक तत्व (Caieium) इस रोग पर खास प्रतिक्रिया करता है। इसके गुण पर मुग्ध हो डाक्टर-लोग हर तरह इसका प्रयोग यक्ष्मा रोग में करते हैं। तो क्या, आयुर्वेद इस तत्व की जानकारी से कभी भी विमुख है? इसके तो जिस किसी भी प्रयोग की चर्चा करें, किसीमें मौक्तिक तो किसीमें मुक्ताशुक्ति, किसीमें प्रवाल, तो किसीमें वराटिका। कहने का आशय यह है कि आयुर्वेद ने भी खटिक तत्व का सदुपयोग जी भर कर किया है। वे नुसखे भी जिनमें केवल वनौषधियां हैं। उदाहरणार्थ—सितोपलादि चूर्ण लेलें; इसमें खटिक तत्व विशेष का यौगिक वंशलोचन प्रचुर मात्रा में पड़ता है। सेनो क्राइसिन भी जिसे वैज्ञानिकों ने सोने से बनाया है, इस स्वर्ण को भी प्रयोग में लाने से आयुर्वेद नहीं चुकता। यक्ष्मा नाशक "मृगाङ्क" आदि अनेक योगों में सोने की भस्म दी जाती है। इस प्रकार अनुभव बतलाता है कि यक्ष्मा सम्बन्धी खोज में पश्चिमीय विज्ञान आयुर्वेद से कई शताब्दियां पीछे रहा है। उदाहरणार्थ—पाश्चात्य वैज्ञानिकों को यक्ष्मा रोग का ज्ञान ईसा के ४६० से ३७७ वर्ष पहिले हुआ तो भारत वासियों

को ईसा से २००० वर्ष या इससे भी पहले। स्वर्ण घटित औषधि का आविष्कार यूरोपीयनों ने १६ वीं सदी में किया है, तो प्राचीन आयुर्वेद ने दसवीं सदी या उससे भी पहले। खटिक-तत्व की उपयोगिता इनलोगों ने आज समझी है; और आयुर्वेद हजारों वर्षों से इस तत्व का प्रयोग करता आ रहा है। इस तरह स्पष्ट है कि एलोपैथिक अनुसन्धान आयुर्वेद का बराबर अनुगमन करता आ रहा है। यदि आधुनिक वैज्ञानिक आयुर्वेदीय चिकित्सा सिद्धान्त का लक्ष्य कर चिकित्सा विषय अन्वेषण करें तो वह दिन दूर नहीं कि यक्ष्मा से मरने वालों की संख्या अङ्गुलियों पर गिनने मात्र की रह जायेगी। जैसाकि अमेरिकाके सुप्रसिद्ध डाक्टर "जी० ई० क्लार्क", एम० ए० एम० डी० ने आधुनिक चिकित्सकों को सत्परामर्श देते हुए कहा है—"यदि 'चरक संहिता' के अनुसार चिकित्सा व्यवस्था की जाय तो जगत में शव वाहकों का कार्य बहुत कम हो जाय और घट जाय जीर्ण निर्बल रोगियों की संख्या"।

See Indian Gazetter India Page 220. See also weber's Indian Literature Page 270.

चिकित्सक का कर्त्तव्य।

चिकित्सक को चाहिये कि सर्व प्रथम रोगी से रोगोत्पादक कारणों का परिवर्जन करावे; ऐसा करने से रोग स्वतः अच्छे हो जाते हैं। जैसाकि कहा भी है—

पूर्व सर्व गदे कुर्यान्निदान परिवर्जनम् ।
ते नैव रोगा: शीर्यन्ते शुष्क नीराइवाङ्कुरा: ॥

यदि यक्ष्मा रोगी को विवन्ध (कब्जियत) हो तो विरेचक औषधि न देकर १ औंस द्राक्षारिष्ट और १०-१५ बूँद विषमुष्ट्यासव मिला कर पिलावे या कुमार्यासव अथवा पिप्पल्यासव की मात्रा दें। ऐसा करने पर भी यदि कोष्ठ शुद्धि न हो तो रोगी के उदर प्रदेश पर एरण्ड तैल लगा कर जलस्विन्न गर्म गर्म फलालेन के टुकड़े से स्वेदन कर देना चाहिये, इस क्रिया से पैखाना साफ हो जाता है। यदि इस क्रिया से भी सफलता न मिले तो निम्नलिखित प्रयोग गुनगुना नाभि स्थान के चारों ओर लगा दे; इस प्रयोग से ३०-३५ मिनटों में मलाशय की सफाई हो जाती है।

सुहागा
तुतिया
सीज का दूध
जमालगोटे की गिरी
एरण्ड बीज की गुद्दी

सब समान भाग ले और विधिवत लेप तैयार करले। इस प्रयोग को 'श्री हर्षकीर्ति ने लिखा है। यथा—

टङ्कण मयूर तुत्थं स्नुहीक्षीर जैपालमेरण्डम् ।
नाभि प्रलेप दत्तं नरपति योग्यं विरेचनं कुरुते ॥

(प्रयोग अनुभूत है)

रस क्षय की चिकित्सा—गर्म दुग्ध में पिप्पली चूर्ण और मिश्री मिलाकर रात में पिलाना चाहिये।

रक्त क्षय की चिकित्सा—गर्म दूध में मिश्री घी और गोल मिर्च का चूर्ण देकर पिलावे या मांस रस का सेवन करावे।

मांस क्षय की चिकित्सा—मांसहारी जीवें का मांस सेवन करावे।

मेद क्षय की चिकित्सा—जीवनीयौषधि सिद्ध घृत, दूध मिश्री, लघु अन्न और मांस रस खिलावे।

अस्थि क्षय चिकित्सा—जाङ्गल जन्तुओं का मांस, बकरे के टाँग का सिरुआ, मांसयुक्त तरुणास्थि, मधुर अन्न और औषधि सिद्ध घृत दुग्ध का सेवन करावे।

मज्ज क्षय चिकित्सा—अस्थि क्षय की तरह करे।

शुक्र क्षय चिकित्सा—धारोष्ण दुग्ध और मुर्गी का अण्डा दे।

नोट—धारोष्ण दूध पचने में हलका एवं अमृतोपम गुणकारी है। इसे स्वस्थ गाय से पवित्र स्थान और विशुद्ध पात्र में विशुद्ध हाथों से स्वस्थ मनुष्य को निकालना चाहिये। "दुग्ध विशेष की विवेचना 'भाव प्रकाश' में देखें"।

ओज क्षय की चिकित्सा—लाक्षणिक चिकित्सा के साथ-साथ दूध और अण्डे का विशेष सेवन करावे।

व्यायाम शोष चिकित्सा—स्निग्ध शीतल एवं सात्म्य बृंहण उपचार करे। शोक, क्रोध, मैथुन, पर निन्दा और

द्वेषादि बुद्धि को त्याग कर शान्ति और सन्तोष धारण करे।

व्यवाय शोष चिकित्सा—वायु नाशक, स्निग्ध एवं बृंहण उपचार करना चाहिये।

शोक शोष चिकित्सा—स्निग्ध, मधुर, शीतल एवं लघु अन्न और दूध मिश्री दे तथा धैर्य प्रदान और हर्षणोपचार करे।

वार्द्धक्य शोष चिकित्सा—पूर्ववत्।

अध्वशोष चिकित्सा—मृदु एवं उत्तम शय्या पर शयन करावे, शीतल, मधुर पौष्टिक पानक, सुस्वादु अन्न और मांसरस का भोजन करावे।

व्रण शोष चिकित्सा—अनार या आँवलायुक्त-स्निग्ध-शीतल, मधुर एवं दीपन ईषदम्लमुद्ग यूष और मांस रस दे।

उरःक्षत चिकित्सा—स्निग्ध शीतल एवं सात्म्य बृंहण उपचार करे।

औपद्रविक चिकित्सा।

प्रतिश्यायादि चिकित्सा—छोटी पीपल, सोंठ, यव, कुलथी, अनारदाना, आँवला इनका जल बना—बकरी का मांस छोड़ घी के साथ पका कर यूष छान कर पिलाना चाहिये। इस यूष के सेवन से जुकाम, सिर दर्द, खांसी, श्वास रोग, स्वर भेद और पसलियों का दर्द जाता रहता है। यथा—

स पिप्पलीकं सयवं स कुलत्थं सनागरम्।

दाडिमा मलकोपेतं सिद्ध मांस रसं पिवेत् ॥

तेन षड् विनिवर्तन्ते विकारा पीनसादयः। (चरक)

नोट—पुरना प्रतिश्याय (जुकाम) से पीनस रोग हो जाता है। ऐसी दशा में व्याघ्री तैल (शार्ङ्ग०) का नस्य खूब लाभ करता है। खाने के लिये विचार पूर्वक व्योषादि बटी अथवा चित्रक हरीतकी (चक्र द०) देनी चाहिये। पीनसादि विकार में पीने योग्य जल—धनियां, पीपल, सोंठ और दशमूल देकर क्वथित जल पिलावे। सुश्रुतोक्त सुरसादिगण का फाण्ट दे।

पार्श्वादि वेदना विनाशक लेप—घृत मिश्रित-सौंफ, मुलेठी, कूठ, तगर और चन्दन का सुखोष्ण लेप करना चाहिये। इससे सिर, पसली और कन्धों की पीड़ा दूर होती हैं। यथा—

शतपुष्पा समधुकं कुष्ठं तगर चन्दनम्।

आलेपनं स्यात्स घृतं शिरः पार्श्वांस शूलनुत् ॥ 'चरक'

क्षय रोगी के वक्षःस्थल की पीडा पर लेप—

[क] मुर्गे के कच्चे मांस का लेप।

[ख] काली तिल + कपूर + तारपिन तेल के मिश्रण का मालिश।

[ग] पुराना गोघृत और सैन्धव लवण का मालिश।

[घ] पुरातन गोघृत २॥ तोला और तारपिन तेल ५ तोला का मिश्रण मालिश करने से अच्छा लाभ करता है।

दैहिक वेदना चिकित्सा—सामर्थ्यानुकूल शरीर में सिद्ध

स्नेह (चन्दनादि तैल आदि) का मालिश कर गुनगुने जल से स्नान या अङ्गप्रोञ्छन (Sponging) करावे।

कफ प्रसेक चिकित्सा—यक्ष्मा रोग में जब वायु उदीर्ण रहता है तो कफ अधिक निकलता है। ऐसी हालत में यदि रोगी बलवान हो, खून मुंह से नहीं आता हो एवं रोग की प्रथमावस्था हो तो मदन फल चूर्णयुक्त दूध पिलाकर सावधानी से उचित मात्रा में वमन करावे या स्निग्धोष्ण क्रिया द्वारा उस कफ को जितना चाहिये। इसकेलिये आर्द्रक स्वरस मधु या गुड़ के साथ दिया जाता है।

छर्दि चिकित्सा—जो चिकित्सा कफ गिरने पर की जाती है वही वमन शान्ति के लिये भी करनी चाहिये। गुड़ूची स्वरस और मधु चटावे, यह वमन और ज्वर के ताप दोनों का शामक है; गुड़ूची स्वरस की जगह सत्व भी ले सकते हैं। हृद्य, वात नाशक और हलके अन्न पान का प्रयोग करे। खाने को बैगन का भरता दे। घृतभर्जित धनियेंकाचूर्ण मिश्री या द्राक्षौज (Grape Sugar) मिलाकर दे। छोटी इलायची और मिर्च का चूर्ण यथोचित शर्करोदक (शर्बत) में देकर पोने को दे। शीतल जल से सह्यमत स्नान करावे या सिर पर ठण्ढे जल की धारा दे।

रक्त वमन की चिकित्सा—मुलैठो तथा श्वेत चन्दन को दूध में पीस तथा दूध में ही मिलाकर पीनेसे रक्त गिरना शान्त होता है। जैसाकि चक्रपाणि जी ने कहा है—

यष्ट्याह्वं चन्दनोपेतं सम्यक् क्षीर प्रपेषितम् ।
तेनैवालोड्य पातव्यं रुधिर छर्दि नाशनम् ॥

(चक्रदत्त)

लाक्षारस और मधु का मिश्रण या विशल्यकरणी का क्वाथ अथवा कुकुरौंदा का स्वरस पिलावे । यथा—

आलक्तक रसैः क्षौद्रं रक्तवान्ति हरं परम् ।
विशल्यकरणी क्वाथः कुक्कुरद्रु द्रवस्तथा ॥

(चक्रदत्त)

आन्त्रिक रक्तस्राव चिकित्सा— उदुम्बर पानक पिलाना लाभकारी है । यह पेट (पचन संस्थान) को बीमारियों को ठीक कर कान्तिमान् बनाता है । इसका प्रयोग वैदिक काल से ही होता आ रहा है । यथा—

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा ।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठमे सविताकरत् ॥

(अथर्ववेद—का० १९ अ० ४ सू० ३१)

हिन्दी— पहिले समय में ब्रह्माजी ने उदुम्बर (गूलर) की मणि के द्वारा पशु-पुत्र-धन-शरीर आदि की पुष्टि के अभिलाषी के लिये प्रयोग किया था ।

रक्तष्ठीवन चिकित्सा—शुद्ध सौविराञ्जन (सपेद सुरमा), शुद्ध गैरिक और पीपल वृक्ष की लाख इन तीनों को समान

भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करे और ४ रत्ती से ८ रत्ती तक मधु से चटावे।

अतिसार चिकित्सा—जामुन और आम की गुठली, बेलगिरी, कैंथ, सोंठ इनका चूर्ण या क्वाथ, पेया अथवा लाजमण्ड के साथ पिलावे, यह परम लाभकारी है। "चरक"

अथवा—चाङ्गेरी, तक्र और अनार के रस के साथ सिद्ध की हुई यवागू पिलानी चाहिये। अतिसार में तक्र, मद्य, चाङ्गेरी (चूका या अम्ललोनिथा) और अनार का रस सन्दीपन कारी तथा संग्राही होता है।

अतिसार में दुग्धिका (दूधी) को अग्नि पर संस्कृत करके (हलका भूनकर) दे। भाङ्ग के पत्तों का चूर्ण थोड़ा भून कर उचित मात्रा में मधु के साथ रात में सोते समय दे। ये प्रयोग अच्छा लाभकारी हैं।

प्रवाहिका (Disentry) चिकित्सा—शतपुष्पार्क में ईसबगोल मिश्री देकर सेवन करावे। कच्चे बेल को पका कर उसकी गुदी मिश्री के साथ खिलावे। धान्यकादिक योग भी (धान्य पञ्चक) प्रसिद्ध लाभकारी है।

मुखशोधनोपचार—

न० (१) दालचीनी, नागरमोथा, इलायची और धनियां

न० (२) नागरमोथा, आँवला और दालचीनी।

न० (३) दालचीनी, दारु हलदी और अजवायन। (चरक)

समभाग गृहीत प्रत्येक योगके चूर्ण को दाँत और जिह्वादिकों में मलना मुख को शुद्ध करता है और रुचि को बढ़ाता है। इन योगों को गोली बनाकर मुंह में धारण करना भी लिखा है।

नोट—मुंह की विरसता हटाने के लिये उपर्युक्त नम्बर १-२-३ के किसी भी एक योग का कपड़ छन चूर्ण बनाकर उसमें खड़िया (Chalk) का सूक्ष्म चूर्ण अर्द्ध भाग और थोड़ा शुद्ध कपूर मिलाकर रखले। इस चूर्ण और निम्बादि के दतौन से सबेरे और साँझ दोनों समय मुख की सफाई करे। अथवा गरम जल में चूर्ण को मिलाकर थोड़ी-थोड़ी देर मुंह में रख कर कुल्ले करे।

अरुचि चिकित्सा—कच्चे केले को घी में भून कर मिर्च का चूर्ण अवघूलन कर खाने को दे। मोरेश्वर भट्ट ने लिखा है कि—

अन्त्रेण हीनं मरिचैः सगर्भं रम्भाफलं तन्निशि सन्निधाय।
प्रातः सुभृष्टं मृदुपावकेऽद्याच्छ्वासांच्छिनत्तीव तरून्कुठारः॥

हिन्दी—केले के भीतर जो काले तन्तु हों उन्हें दूर कर गोल मिर्च का चूर्ण फली के भीतर बुरक दे और मन्द आग से रात का पकाया सवेरे खाने से श्वास रोग आराम होता है।

नोट—यक्ष्मा में अरुचि और श्वास दोनों उपद्रवों की शान्ति इससे होती है।

उदर क्रिमि चिकित्सा—यवानिका और विडंग चूर्ण को तक्र के साथ दे। अथवा एरण्डमूल और नागरमोथे का काढ़ा पिलावे।

कास चिकित्सा—सितोपलादि चूर्ण को वासा पानक से दे। वासा पानक निर्माण—

वासा क्वाथ में समान भाग मिश्री देकर दो तार की चासनी करे और निम्बुकाम्ल (Citric Acid) उचित मात्रा में देकर बोतल में रखले। इसको वासा-सिरप भी कहते हैं।

श्वास चिकित्सा—सोमः (Ephedra-Vulgaris)—इसका चूर्ण ५-७ रत्ती प्रातः सायम् उष्ण जल से खाय यह स्थायी फलद है और धत्तूर पत्र धूमवत् झट फायदा पहुंचाने वाला है। इसके अरिष्ट और अवलेह की कल्पनायें भी सुसेव्य होती हैं। दूसरा प्रयोग—

बहेड़े का चूर्ण	२ रत्ती
मिर्च का ”	२ ”
मिश्री	१ माशे
फेनाश्म भस्म	१/१०० रत्ती

दिन में २-३ रत्ती की मात्रा में ३-४ बार मधु से चटावे।

स्वप्न दोष चिकित्सा—निद्रावस्था में शुक्र पात होने पर १—"सुमधुर चन्दनासव २ तोले में १०-१५ बूँद विषमुष्ट्यासव मिला कर पिलावे। कस्तुरी एवं प्रवाल भस्म का मिश्रण रात में सोने के समय दे।

२—प्रयोग। वङ्ग भस्म १ रत्ती
प्रवाल भस्म २ „
गुलकन्द १ तोला

दूध मिश्री या जल से दे।
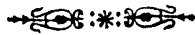
औषधि व्यवस्था के कुछ उदाहरण।

१—प्रातः सायम्—फेनाश्म भस्म १ १/१० रत्ती
मुक्ता भस्म २ „
चूर्ण सितोपलादि १ शाण

गुडूची स्वरस और मधु[१] से दे।

२—दोपहर दिन और ६ बजे रात में रसोन सुरा (चक्रदत्त) ६० बूँद (१ ड्राम) २ भर जल में देकर पिलावे।

नोट—इस व्यवस्था का व्यवहार यक्ष्मा की प्रथमावस्था में उत्तम लाभकारी है। विषस्य विषमौषधम् (समः समं समयति) =Similia Similibus Curantur सिद्धान्तानुसार यक्ष्मा विष (T. B. Toxin) को कम करने और जीवनी शक्ति की सहायता फेनाश्म भस्म (सङ्खिया) की

१ मधु क्षय नाशक है। इसमें खाद्योज (Vitamine) प्रचुर मात्रा में है। इसके क्षय नाशक गुण को 'योगरत्नाकर' में पढ़ें।

उचित मात्रा के प्रयोग से होती है, उपद्रव सभी घट जाते और भूख बढ़ती है। इसके विषघ्न गुणों को आप निम्नाङ्कित मन्त्र में देखें। यथा—

ब्राह्मणो यज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः।
स सोमं प्रथमं पपौ स चकारा रसं विषम्॥

(अथर्व वेद— का० ४ अ० २ सू० ६)

ब्राह्मण का अर्थ सङ्खिया विष है।

(ब्राह्मणों) सङ्खिया विष (प्रथमो) सब विष नाशक औषधियों में श्रेष्ठ (जज्ञे) उत्पन्न हुआ। उसके (दशशीर्षो) दस सिर और (दशास्यः) दस मुंह थे। उसने (स सोमं प्रथमं पपौ) प्रधान सोम का पान किया (सचकारारसंविषम्) और विष को बलहीन कर दिया।

पाठक! ब्राह्मण शब्द को निम्नलिखित अथर्व वेद के ही मन्त्र में देखें। यथा—

अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत् त्वचि।
दूष्याकृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेत मनीनशम्॥

(अथर्व वेद— का० १ अ० ५ सू० २४)

कुष्ठ चिकित्सा इस मन्त्र में वर्णित है। 'लक्ष्म' के अर्थ 'कलङ्क' या धब्बे के हैं। तथाच—

'कलङ्काङ्कौ लाच्छनं च चिन्हं लक्ष्म च लक्षणम्' (अमरकोषः)
तथाहि— मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।

(कालिदास)

और ब्रह्मण या ब्रह्मपुत्र शब्द सङ्खिया का पर्यायवाची है। इस प्रकार इसके अर्थ स्पष्ट हैं। "अस्थि में उत्पन्न होनेवाले श्वेत कुष्ठ (किलास) और जो शरीर (मांस) एवं त्वचा में उत्पन्न होने वाला है, और जिसने धातुओं को दूषित कर दिया है या जो धातु दूषक पदार्थों से उत्पन्न हुआ है उस तेरे श्वेत कुष्ठ के दाग को मैं सङ्खिया द्वारा दूर करता हूं। यह है मन्त्रार्थ।

सङ्खिया का व्यवहार श्वेत कुष्ठ नाश के लिये आयुर्वेद में कई स्थानों पर हुआ है। उसका ब्रह्मपुत्र नाम प्रसिद्ध ही है। मन्त्र में दस सिर कहने का उद्देश्य विष के दस गुणों से है जो कि आचार्य 'दृढ़बल' जी ने स्वकृत तन्त्र में कहा है। यथा—

लघु१ रूक्ष२ माशु३ विशदं४ व्यवायि५ तीक्ष्णं६ विकाशि७ सूक्ष्मञ्च८। उष्ण९ मनिर्देश्य रसं दशगुण मुक्तं विषं तज्ज्ञैः॥

इन्हीं गुणों को उपरोक्त मन्त्र में रूपक देकर आलङ्कारिक शैली से (दशास्यः) दस मुंह का कहा है।

शास्त्र में विष के नव भेद हैं। यथा—

पुंसि क्लीवेच काकोल१ कालकूट२ हलाहला:३।
सौराष्ट्रिकः४ शौक्लिकेयो५ ब्रह्मपुत्रो६ प्रदीपनः७॥
दारदो८ वत्सनाभश्च विषभेदा अमी नव।
(अमरकोषः)

दुर्भाग्यवश आयुर्वेद का औषधि-अनुसन्धान (Medicine research) बन्द हो गया और अमृतोपम काम देनेवाले विषों के परिज्ञान से हम सर्वथा विमुख हो गये हैं और आज नव में से एकमात्र वत्सनाभ का ही परिचय रखते हैं, जिसके फल स्वरूप ज्वर चिकित्सा में सफलता पाते हैं; वर्ना इसे भी अगर भूल बैठे होते तो इसके बिना "मृत्युञ्जय" बेकार हो जाता। अब आप ब्रह्मपुत्र के शास्त्रोक्त वर्णन से मेरे अनुमान की सत्यता को तौलें। यथा—

वर्णतः कपिलोयः स्यात् तथा भवति सारकः।
ब्रह्मपुत्रो स विज्ञेयः। (भाव प्रकाश)

हिन्दी—रङ्ग रूप में कपिल (धूसर ईषत् पीताभ) एवं दस्तावर होता है जिसे ब्रह्मपुत्र कहते हैं। ये दोनों बातें सङ्खिया में नित्य हैं। पुनः—

ब्राह्मणः पाण्डुरस्तेषु क्षत्रियो लोहित प्रभः।
वैश्य पीतः सितः शुद्रो विष उक्तश्चतुर्विधः॥
(भाव प्रकाश)

ग्रन्थकार ने वर्णन की निजि शैली में श्वेत को ब्राह्मण, लाल को क्षत्रिय, पीले को वैश्य और काले को शुद्र कहा है। हम ठीक इसी तरह सङ्खिया (Arsenic) को चार रूपों में पाते हैं। यथा—

सङ्खिया के योग—सङ्खिया पत्थर (Aesenic Oxid) श्वेत
मनःशिला (Realgar) लाल

हरिताल (Orpiment) पीला

मिसपिकेल (Arsenicpyrights or Mispicle) काला ।

इस प्रकार यह निश्चित है कि सङ्खिया ब्रह्मपुत्र हीं हैं ।

फिर 'रस तरङ्गिणी' में जो इसके दो भेद लिखे हैं, वे भेद तत्वरूपक हैं योग रूपक नहीं । यों तो आजकल कृत्रिम होने से आप ८ तरह की सङ्खिया खरीद सकते हैं । जैसाकि –

(१) सङ्खिया खनिज
(२) „ श्वेत
(३) „ दूधिया
(४) „ पीला
(५) „ काला
(६) „ लाल
(७) „ भूरा
(८) „ हलका हरा

पञ्जाब आयुर्वेदिक फार्मेसी आदि औषधि विक्रेताओं का सूचीपत्र देखें ।

अब आप सङ्खिया के गुणों को रसायनाचार्य 'सदानन्दजी' के शब्दों में सुनें । यथा–

गौरिपाषाणकः दोषघ्न : ।
अग्निमान्द्य हरः कामं विषमज्वर नाशनः ।
कान्तिप्रदः परं जीर्ण पाण्डुरोग निषूदनः ॥

द्रुतमारम्भ वेलायां यक्ष्माणमपि नाशयेत् ।

(रस तरङ्गिणी)

हिन्दी—सङ्खिया (दोषघ्न) विजातीय१ द्रव्य विनाशक, मन्दाग्निहारक, विषमज्वर विध्वंसक, पाण्डु रोग परित्राणक और सौन्दर्य वर्द्धक है तथा प्रारम्भिक अवस्था की राजयक्ष्मा को भी दूर करने वाली है।

आप देखें 'राज मृगाङ्क' इस सङ्खिया योग से खाली नहीं है; इसमें सङ्खिया के यौगिक मनःशिला और हरिताल प्रयुक्त होते हैं। यथा—

रस भस्म त्रयोभागा भागैकं हेमभस्मकम् ।
मृततारस्य भागैकं शिलागन्धक तालकम् ॥

(रसेन्द्रसार संग्रह)

(२) प्रातः—मुक्ता पञ्चामृत (योगरत्नाकर) २ रत्ती मक्खन के साथ। सायम्—मुक्तामालिनी वसन्तः (योगरत्नाकर) २ रत्ती, सितोपलादि और मधु से दे। ज्वर अधिक रहने पर गुडूची सत्व या स्वरस और मधु से दे।

नोट—यक्ष्मा विनाशक औषधियों के योग में कच्चे धात्वादि का संमिश्रण करना सर्वथा अयोग्य है। सभी योगों में निरुत्थ भस्म देना ही श्रेयस्कर है। यह हमारी कुछ नयी राय नहीं है, प्राचीन चिकित्सा विज्ञान इस बात

१ Foreign matter

का साक्षी है। निरुत्थ भस्म अपनी सूक्ष्मता के कारण अनुभव सिद्ध परम लाभप्रद है। आप यक्ष्मा नाशक मृगाङ्कों की निर्माण विधि पढ़ें, योग में निरुत्थ भस्म का ही उल्लेख पायेंगे। यथा —

निरुत्थ भस्म सौवर्णं द्विगुणं भस्म सूतकम्।
त्रिगुणं भस्म मुक्तोत्थं शुक पुच्छं चतुर्गुणम्॥

(रसेन्द्र)

इस उदाहरण से आपको भलीभाँति निश्चय हो गया होगा कि यक्ष्मानाशक 'मालती वसन्त' जैसे रसोत्तम में निरुत्थ स्वर्णभस्म नहीं देकर स्वर्ण पटल या सोने का वर्क तथा मुक्ता-भस्म की जगह मुक्तापिष्टी का प्रयोग करना सर्वथा अनुचित है। खर्पर के विषय में निर्विवाद निश्चय है कि यह यशदधातु का उपधातु है। जैसाकि कहा भी है—

रसकोरसकञ्चैव मतं यशद कारणम्
मृत्तिकाभश्च पीताभो भाराढ्यश्चेह शस्यते।

(रस तरङ्गिणी)

इसलिये जिन्हें विश्वसनीय खर्पर की प्राप्ति न हो उन्हें यशद भस्म लेना चाहिये। खटिक तत्व (Calcium) के यौगिक द्रव्य विशेषों में मौक्तिक परम रहस्यमय है। भस्मीभूत मौक्तिक क्षारत्वात् सूक्ष्मातिसूक्ष्म रक्त प्रणालियों में बहता हुआ यक्ष्मा के प्रदाहयुक्त स्थानपर पहुंचकर उस स्थान को अपनी

आवरणकारी क्रिया (Dipositation) के द्वारा आच्छादित कर आश्चर्यप्रद लाभकारी है। आचार्य 'विद्यापति' ने आन्त्रिक प्रदाह एवं रक्तस्राव पर मौक्तिक भस्म की प्रवल प्रतिक्रिया को देख कर ही कहा है कि—

मुक्ताभस्मेति नामेदं दोषं दृष्ट्वा प्रकल्पयेत्।
गुञ्जार्द्धमेकगुञ्जं वा कर्पूरेण सुवासितम्॥
जातिफलादि संयुक्तं रहस्यं परमंमतम्।

("वैद्यरहस्ये"—रक्तातिसार चिकित्सायाम्)

हिन्दी—रोगी के दोषों को विचार कर आधी रत्ती या १ रत्ती मोती का भस्म, शुद्ध कर्पूर और जायफल चूर्ण मिला कर दे 'यह प्रयोग रहस्य है'।

'विद्यापति' जी को अपने अनुभवसिद्ध प्रयोगों में महती-आस्था है, अतः आप विवश हो हार्दिक भाव को उगल ही तो दिया है। यथा—

अस्मद्ग्रन्थादाहृतान सिद्धयोगा न न्यग्रन्थे स्थापयिष्यन्ति केचित्। नास्मात्स्थानाद्ये वदिष्यन्ति तेषां नाशं कुर्या-दीश्वरोऽभिष्ट सिद्धेः॥ (वैद्यरहस्यादौ)

भोजन के समय—ग्रासान्तर में "आदित्य वटी" (योगरत्नाकर)।
सुबह और शाम के जलपान के बाद—द्राक्षासव २-४ तोले।
रात्रि में सोने के समय—मृतसञ्जीवनी सुरा उचित मात्रा में दे।

शरीर में मालिश के लिये— महा चन्दनादि तैल।

वक्षःस्थल पर मालिश के लिये—पुरातन गोघृत।

(३)	स्वर्णभस्म	$\frac{1}{8}$ रत्ती
	विषाण भस्म	२ "
	मुक्ता भस्म	१ "
	वासक क्षार	$\frac{1}{4}$ "
	सोंठ का चूर्ण	२ "

प्रातः सायम् मक्खन मिश्री से दे।

भोजन के बाद दिन और रात में वारुणीमण्ड की योग्य मात्रा दे।

इस व्यवस्था से क्रमशः ज्वर मन्द पड़ जाता है। आप इस योग के सिर्फ सोंठ का ज्वरघ्न प्रभाव निम्नाङ्कित वैदिक मन्त्र में देखें। यथा—

यः परुषः पारुषेयोऽवध्वंसइवारुणः।
तक्मानं विश्वधा वीर्य्याधराञ्चं परासुवा॥

(अथर्व वेद—का० ५ अ० ५ सू० २२)

हिन्दी मन्त्रार्थ—हे! (विश्ववीर्या) सभी प्रकार के बल को धारण करने वाली औषधि, (विश्वा) सोंठ। तूं (तक्मानं) ज्वर को (अधराञ्चं) नीचे करके अर्थात् इसके तापपरिमाण (Temperature) को कम करती हुई (परासुव) दूर भगा दे। (यः) जो यह ज्वर (परुषः) पर्व पर्व या सन्धि

सन्धि में बसा हुआ है। (पारुषेयः) या सन्धियों में व्याप्त आम नामक विष के द्वारा उत्पन्न होता है और जो (अरुणः इव अवध्वंसः) अग्नि के समान जलाने वाला है।

अब इस प्रयोग को विषाण (मृग शृङ्ग) नामक औषधि पर वेद की सम्मति पढ़ें। यथा—

हरिणस्य रघुष्यदोधि शीर्षाणि भेषजम्।
सक्षेत्रियं विषाणया विषूचीनम नीनशत्॥
(अथर्व वेद—का० ३ अ० २ सू० ७)

सायण भाष्य—रघुष्यदः रघु लघुस्यन्दने गच्छतीति रघुष्यत्। तथा विधस्य हरिणस्य कृष्ण मृगस्य अधिशीर्षणि शिरसि भेषजम् रोगनिवर्तकम् शृङ्गरूपम् औषधम् अस्ति। स हरिणः विषाणया स्वशृङ्गेण क्षेत्रियं परक्षेत्रे चिकित्स्यं माता पितृ शरीराद् आगतं क्षय कुष्ठापस्मारादिकं विषूचीनम् विश्वक् सर्वतः अनीनशत् नाशयतु।

हिन्दी—तीव्रगामी कृष्णमृग के शृङ्ग में रोग निवारक-शक्ति है। वह इसके द्वारा वंशज या दोषज यक्ष्मा, कुष्ठ और अपस्मार आदि रोगों को जड़ से दूर कर दे।

मुक्ता भस्म और वासक क्षार के विषय में तो कुछ कहना हीं नहीं है। स्वर्ण के विषयमें आप मारवाड़ के सुप्रसिद्ध वैद्य—दिवंगत "मोरेश्वर भट्ट" की पुस्तक 'वैद्यामृत' के द्वितीयालङ्कार में देखें। यथा—

नवनीत सिता मधुप्रयुक्तो वरखो हेमभवः क्षयं क्षिणोति।

वितथः प्रभवेद्यं प्रयोगो यदि तन्मे शपथः सदाशिवस्य ॥

नोट—इस प्रयोग के स्वर्ण वर्क की जगह मेरी राय स्वर्ण भस्म लेने की ही है जैसाकि पूर्व में लिख चुका हूं।

इस उपर्युक्त प्रयोग के सेवन से रोगी को निद्रा भली भाँति आती है और यक्ष्मा जीवाणु जन्य विष की शान्ति होती है। रज यक्ष्मा में खांसी, दम फूलना, गलाफंसना आदि उपद्रवों में यह अच्छा लाभकारी है तथा हीन मनोबल के यक्ष्मा में अच्छा चमत्कार दिखलाता है।

(४) अभ्रक भस्म ½ रत्ती
प्रवाल भस्म २ „
शिलाजतु २ „

प्रातः, दोपहर, सायम् और ९ बजे रात में बहुवार पानक के अनुपान से दे।

बहुवार पानक निर्माण—पांच सात सूखे लसोड़ों (बहुवार फलों) को लेकर कुचल डाले और डेढ़ सेर जल के साथ १२ घण्टे मिट्टी के पात्र में रहने दे, बाद में कुछ क्वथन कर डाले—फिर गुठली फेंक छिलके को मसल कर छान ले और उस द्रव में बराबर मात्रा स्वच्छ मिश्री देकर दो तार की चाशनी बना लेनी चाहिये। चाशनी में यथोचित निम्बुकाम्ल [Citric Acid] देकर शीशी में रक्खे कि वह जमने नहीं पावे और हमेशा शहद सी बनी रहे। इसकी मात्रा २ से ४ तोले तक।

गुण यह केवल प्रयोग से भी प्रतिशाय, रक्त स्राव और कास वेग को ठीक करता है।

(५) प्रतिदिन तीन वार—स्फुटिका खील १ मटर प्रमाण
गुलकन्द १ तोला „

४-५ तोले लाक्षारस के अनुपान से दे।

नोट—फर्रुखाबाद के प्रसिद्ध यूनानी चिकित्सक स्वर्गीय 'सैयद असगर अली का कहना था कि ऐ हकीम! तूं क्यों कीमती आहनों के पीछे मुफ्त में परेशान होता है। अपने घर की इस नाचीज़ फिटकरी की तरफ देख, इसमें सौ लालों की करामात पायेगा।

उक्त हकीम साहब की इस मुबालिका से प्रभावित हो मैं इस सुलभ द्रव्य की उपयोगिता को आर्ष ग्रन्थों में देखना आरम्भ किया, एवं 'सुश्रुत संहिता' के निम्नाङ्कित योग में इसका सदुपयोग पाया। यथा—

एलाजमोदा मलका भयाक्ष गायत्र्यरिष्टा सनशाल सारान्।
विडंग भल्लातक चित्रकोग्रा कटुत्रिकाम्भोद सुराष्ट्रजांश्च॥
पक्त्वाजलेतेन पचेद्धि सर्पिस्तस्मिन् सुसिद्धे त्ववतारिते च।
त्रिंशत्पलान्यत्र सितोपलाया दत्वा तुगाक्षीरि पलानिषट् च॥
प्रस्थेघृतस्य द्विगुणश्चदद्यात् क्षौद्रं ततो मन्थ हतं विदध्यात्।
पलं पलं प्रातरतः प्रलिह्य पश्चात् पिवेत् क्षीर मतन्द्रितश्च॥
एतद्धि मेध्यं परमं पवित्रं चक्षुष्य मायुष्य मथो यशस्यम्।

यक्ष्माणमाशु व्यपहन्ति चैतदित्यादि ।

(सुश्रुत—उत्तरतन्त्र अध्याय ४१ श्लोक ४८ से ५१)

अब आप लाक्षा के गुणों को वदिक मन्त्रों में देखें। यथा—अथर्व वेद—का० ५ अ० ५ सू० १ में 'सिलाची' नाम की औषधि का वर्णन मिलता है। यह 'सिलाची' लाक्षा का ही पर्यायवाची शब्द है।

यथा— रात्री माता नभः पितार्यमाते पितामहः।
सिलाची नाम वा असि देवनामसि स्वसा ॥

(अथर्व वेद—का० ५ अ० ५ सू० १)

हिन्दी—हे लाक्षे! रात्रि, नभ, अर्यमा, तेरे वर्द्धक व पालक हैं। तू विद्वानों का हित करनेवाली है। विशेष हित प्रदर्शनार्थ इसमें रात्रि को माता नभ को पिता, अर्यमा (सूर्य) को पितामह तथा देवताओं को भ्राता करके वर्णन किया हैं।

अब आप इसका गुण सुनें।

यस्त्वा पिवति जीवति त्रायसे पुरुषंत्वम्।
भर्त्रीहि शश्वतामसि जनानां चन्यञ्चनी ॥

(अथर्व वेद—का० ५ अ० १ सू० ५)

हिन्दी—तू मनुष्यों की रक्षा करती हैं, जिसे रक्त आताहो वह जब तुझे पीता है तो जीवनी शक्ति पाता है। तू अनन्त काल से ऐसे रोगियों की रक्षा करती आ रही है।

और भी— रोहण्यसि रोहण्यस्थन छिन्नस्य रोहणी।

रोहयेदमरुन्धति ॥

(अथर्व वेद—का० ४ अ० ३ सू० १२)

हिन्दी—हे लाख ! तू रोपण करने वाली है, इसलिये तलवार आदि शस्त्र के द्वारा कटे स्थान से बहते हुए रक्त को जो अन्य औषधियों से नहीं रुकनेवाला है उसे तू रोक कर व्रण-रहित बना दे।

वेद लाक्षा की उत्पत्ति का भी निर्देश किया है। यथा—

भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्य श्वत्थात् खदिराद्धवात् ।
भद्रान्न्यग्रोधात् पर्णात् स्यान एह्यरुन्धति ॥

(अथर्व वेद—का० ५ अ० १ सू० ५)

हिन्दी—इसके उत्पन्न करने वाले पेड़—उत्तम पाकर, पीपल, खैर, धव, बड़ और पलाश से निर्यास रूपमें जम जाती है। वह व्रणों को भरने वाली लाख हमें प्राप्त है।

लाक्षा रस निर्माण—इसके बनाने के सम्बन्ध में कई मत हैं। भैषज्य रत्नावली का मत हैं कि—

लाक्षायाः षड्गुणं तोयं दत्वैक विंशतिवारकम् ।
परिस्राव्य जलं ग्राह्यं किंवा क्वाथ्यं यथोदितम् ॥

अर्थात्—लाक्षा को ६ गुने जल में घोलकर २१ बार छान लेने से लाक्षारस तैयार होता है। अथवा क्वाथ की विधि—

आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसम्भवे ।
वारिण्यष्ट गुणे क्वाथ्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥

इस सिद्धान्त से अष्टगुण जल में पकाकर चतुर्थांश रखना चाहिये किन्तु 'योग रत्नाकर' कार ने एक विभिन्न पद्धति बतलायी है। उनका मत है कि—

दशांशं लोध्रमादाय तद्दशांशं च सर्जिकाम्।
किञ्चिच्च बदरीपत्रं वारिषोडशधास्मृतम्॥
वस्त्रपूतो रसो ग्राह्यो लाक्षायाः पादशेषितः।

अर्थात्— लाख से दशांश लोध, लोध से दशांश सज्जी और कुछ बेर की पत्ती मिला सोलह गुने जल में पकाकर चतुर्थांश रहने पर उतार छानकर प्रयोग करे। पर 'शिवदास' जी ने लिखा है—

लाक्षारसो लाक्षाक्वाथः, लाक्षाया षोड्शपलं,
पाकार्थं जलं षोडश शरावं शेषं प्रस्थैकम्।

अर्थात्—लाख ६४ तोले, जल ६ सेर ३२ तोले शेष क्वाथ ६४ तोले रखना चाहिये। यह पद्धति सरलता के ही विचार से उन्होंने लिखी है और रस भी निकल आयेगा, अतः यही व्यवहार में लानी चाहिये।

अब आप इस ५ वीं व्यवस्था में प्रयुक्त गुलकन्द के प्रभाव को सुनें।

नामी हकीम 'शेख बू अली सीना' ने अपनी किताब "कानून" में गुलकन्द के विषय में यों लिखा है कि—मैंने एक जवान औरत की जिसको दूसरे दर्जे में तपेदिक (यक्ष्मा रोग)

पहुँच गयी थी देखी थी। उसको मैंने केवल गुलकन्द सेवन कराया यहांतक कि जितनी वार पानी पीती व खाना खाती थी उतनी ही वार मैं गुलकन्द खिलाता था, बराबर १ साल के लगातार सेवन से वह औरत बिल्कुल नीरोग हो गयी और फिर उसको औलाद भी पैदा हुई और फिर कभी वह रोग उसको नहीं हुआ।

नोट--गुलकन्द तीन प्रकार के होते हैं। गुलकन्द आफतावी, गुलकन्द माहताबी और गुलकन्द आबी। आम तौर से बाज़ारों में बिकने वाला गुलकन्द बहुत खराब और हानिकारक है।

विधि पूर्वक रसोन (लहसुन) सेवन, वर्द्धमान पिप्पली सेवन, नागवला सेवन और शुद्ध शिलाजतु सेवन यक्ष्मा में पूर्ण लाभकारी हैं। यथा --

रसोनयोगं विधिवत् क्षयार्त्तः क्षीरेण वा नागवला प्रयोगम्।
सेवेत वा मागधिका विधानं तथोपयोगंजतुनोश्मजस्य ॥

(सुश्रुत उ० अ० ४१ श्लो० ५५)

नोट--आधुनिक समय में वर्द्धमान पिप्पली की मात्रा रोगी के बलावल के अनुसार एक या आधी पिप्पली से आरम्भ करानी चाहिये।

इधर कुछ दिनोंसे लहसुन, अभ्र, रजत और ताम्रके गुणों पर वैज्ञानिक लोग अनुसन्धान कर रहे हैं। मेरा निश्चित मत है कि लहसुन एकदिन इस रोग की सर्व प्रसिद्ध औषध होगा

क्योंकि इसमें अपने उग्र गन्ध विशेष द्वारा यक्ष्मा विकृति की जगह पहुंचने की क्षमता आदि गुण हैं। आप इसके शास्त्रोक्त गुणों पर ध्यान दें। यथा—

वृष्यश्च मेधा स्वर वर्ण चक्षुर्भग्नास्थि सन्धान करो रसोनः।
हृद्रोग जीर्ण ज्वर कुक्षिशूल विबन्ध गुल्मारुचि कासशोफान्॥
दुर्नाम कुष्ठानलसाद जन्तु समीरण श्वासकफांश्च हन्ति।
(सु०—सू० अ० ४६ शाकवर्ग—श्लो० ३५)

बीजरूप उपशय कथन।

विधि पूर्वक मांस और मद्य के सेवन करनेवाले जितेन्द्रिय मनुष्य के शरीर में यक्ष्मा रोग बहुत दिन नहीं रह सकता है। जो वारुणीमण्ड को पीता है और चरक के सूत्रस्थानोक्त स्नानादि वहिर्मार्जन और उपस्थित मल मूत्र को यथाकाल त्याग करता है, उस मनुष्य के शरीर में यक्ष्मा रोग प्रवेश नहीं कर सकता है। योग्य तैल का मालिश करना, उबटन लगाना, स्नान, जलावगाहन, मार्जन, बस्तिकर्म, घी, दूध और मांस का उचित सेवन, मांस रस और अन्न खाना, इष्ट मद्य पीना, मनोहर गन्ध-सेवन, ऋतु के अनुकूल जल से स्नान, नवीन और प्रिय वस्त्रों का धारण करना, इष्ट मित्रों और सुन्दर स्त्रियों का दर्शन, गीत,

वाद्य और प्रिय बातों का सुनना, हर्ष एवं आश्वासन देने वाली बातों को सुनना, गुरुजनों की नित्य सेवा करना, ब्रह्मचर्य, दान, तप (इन्द्रिय निग्रह), देवार्चन, सत्य, मङ्गलाचार, अहिंसा प्रभृति का पालन, वैद्य और ब्राह्मणों के पूजन एवं सेवन से रोग-राज दूर हो जाता है। जैसाकि 'चरक' जी ने कहा है—

मांस मेवाश्नतः शोषे माध्वीकंपिवतोऽपि च।
नियतस्याल्प चित्तस्य चिरंकायेन तिष्ठति॥

वारुणीमण्ड भक्तस्य वहिर्मार्जन सेविनः।
अविधारित वेगस्य यक्ष्मा न लभतेऽन्तरम्॥

अभ्यङ्गोत्सादनैः स्नानैः अवगाहैर्विमार्जनैः।
वस्तिभिः क्षीर सर्पिर्भिः[1] मांसैर्मांसरसौदनैः॥

इष्टैर्मद्यैर्मनोज्ञानां गन्धानामुपसेवनैः।
यथर्तु विहितैः स्नानैः वासोभिश्चहितैः प्रियैः॥

सुहृदां रमणीयानां प्रमदानाञ्च दर्शनैः।
गीत वादित्र शब्दैश्च प्रिय श्रुतिभिरेव च॥

हर्षणा श्वासनैर्नित्यं गुरूणां समुपासनैः।
ब्रह्मचर्येण दानेन तपसादेवतार्चनैः॥

---

१ यक्ष्मा में अधिक घी खाना मना है। देखें योगरत्नाकर—
रोग विशेषे घृत निषेधः।

सत्येनाचार योगेन मङ्गलैरप्यहिंसया ।
वैद्य विप्रार्चनाच्चैव रोग राजो निवंतते ॥

(चरक)

अस्तु । मैं आद्यन्त समस्त "यक्ष्मा विज्ञान" के निर्देश को निम्नाङ्कित वैदिक मन्त्र में पाकर प्राचीन आर्यों की ज्ञान गरिमा पर पुनः पुनः हर्षित होता हूं। यथा—

पक्षीजायान्यः पतति स आविशति पूरुषम् ।
तदाक्षितस्य भेषजमुभयोः सुक्षितस्य च ॥

(अथर्व वेद—का० ७ अ० ७ सू० ८१)

सायण भाष्य—जायान्यः क्षयरोगः पक्षी पक्षवान् पतत्री-भूत्वा पतति सर्वत्रचरति। सरोगः पूरुषम आविशति सर्वतः प्रविशति। पुरुषस्य कृत्स्नं शरीरं व्याप्नोतीत्यर्थः। अक्षितस्य (क्षिनिवासगत्योः) शरीरे चिरकालावस्थान रहितस्य। सुक्षितस्य चिरकालम् अवस्थितस्य। यद्वा अक्षितस्य अहिंसकस्य शरीरम् अशोषयतः सुक्षितस्य शरीरगत सर्व धातून् सुष्ठु निःशेषं शोषयतः। उभयोः अक्षित सुक्षितयोः क्षयरोगयोः तत् प्रसिद्धं मन्त्राभिमन्त्रितं वीणा तन्त्री खण्डादि रूपं भेषजम् निवर्तनौषधंभवति।

अर्थात्—पक्षियों की तरह क्षयरोग समस्त वायु-मण्डल में परिभ्रमण करता है। वह चारो तरफ से मनुष्य

शरीर में प्रवेश करता है और सारी देह में व्याप्त हो जाता है। यह क्षय नया हुआ हो या पुराना। अथवा शरीर का शोषण नहीं किया हो या दैहिक धातुओं का निःशेष शोषण कर चुका हो; दोनों दशाओं में मन्त्राभिमन्त्रित—वीणा, तन्त्री (सितार) और खण्डादि वाद्य विशेषों की संजीवनी शक्ति सम्पन्न स्वरलहरी क्षयरोग को दूर करनेवाली दवा है।

अन्त में सहृदय विद्वानों से आशा रखता हूँ कि वे आयुर्वेद की वैज्ञानिकता का अनुशीलन करेंगे क्योंकि चिकित्सा क्षेत्र में आयुर्वेद का मांथा ऊँचा रखनेवाले ग्रन्थरत्न-"चरक" "सुश्रुत" मौजूद हैं।

कविवर—"मैथिली शरण" के शब्दों में—

"सुश्रुत चरक रहते हुए सन्देह करना व्यर्थ है"।

तथा नैषधकार कवि 'श्रीहर्ष' के शब्दों में—

कन्यान्तः पुरवाधनाय यद धीकारान्न दोषानृगम्।
द्वौ मन्त्रि प्रवरश्च तुल्य मगदं कारश्चंतावूचतुः॥

देवा कर्णय सुश्रुतेन चरकस्योक्तेन जानेऽखिलम्।
स्यादस्याः नलदं विनानदलनेतापस्य कोऽपिक्षमः॥

मुद्रक—बाबू नेमधारी सिंह,
शङ्कर प्रेस, सीतामढ़ी।